परिचय

संसार के सामने आज हम एक ऐसी पुस्तक रखने जा रहे है जो अपने ढंग की निराली वस्तु है। 'परमानन्द की ओर' के रचयिता से अपना क्या सम्बन्ध है, वारगी इस रहस्य का उद्‌घाटन नहीं करने देती है। आत्म कल्याण के पथ पर चलते हुए परम तत्व परमानन्द का पता लगाना ही भारतीयों की परम्परा है। हिन्दी साहित्य की श्री वृद्धि में एक सन्त साहित्य का नव निर्माण हो रहा है। जिसकी विशेषता सन्त के मुख से निकला हुआ गद्य है। महाकवि विद्यापति, सूरदास और गोस्वामी तुलसीदास ने हिन्दी पद्य निर्माण किया और इस परम्परा के संस्थापक थे कबीर, नानक दादू, सहजो और मीराबाई तथा पलटू दास। श्री समर्थ राम दास ने दास बोध लिखकर मराठी गद्य को भक्ति बाना से सजाया था। महाराज पलक निधि मध्य कालीन तथा आधुनिक संतो की विचार परम्परा के आध्यात्मिक केन्द्रीकरण है। सन्त सद्‌गुरू के दिव्य प्रकाश से उनकी भगवत्‌भक्ति आलांकित हो रही है और इस पुस्तक के प्रत्येक अक्षर से उस आलोक का साका तत्व देदीप्यमान हो रहा है। अपनी आंखें तो चकाचौंध सी हो रही है। उनके हृदय से निकली हुई वाणी का रसास्वादन करने पर विद्या पति के पद का स्मरण होता है और मानसिक लोक से एक कम्पन उठकर स्वर में गूंज उठता है:–

''जन्म अवधि हम रूप नेहारिनु नयन ना तिरपित भेल,
लाख लाख युगहिया माझु राखनु, तब हिया जुड़न न गेल।।''

पुस्तक में भौतिक तत्व के विश्लेषण को विशेष स्थान नहीं दिया गया है। महाराज पलक निधि ने बड़ी सूक्ष्मता से मानव जीवन के लक्ष्य का निरूपण आध्यात्मिक भाषा में किया है। स्वर व्यंजन तक पारलौकिक तत्व से अनुबद्ध है। सरसता और सरलता से यह पुस्तक ओतप्रोत है। यह मुख्य अधिकारियों की वस्तु है जिसका उपयोग सिवाय उनके और कोई नहीं कर सकता है। यह पुस्तक आध्यात्मिक स्वतंत्रता की परिचायिका है। एक दार्शनिक प्रोफेसर ने इस पुस्तक का कुछ अंश सुन कर कहा था। "This is a new scripture to the world" संसार के लिए एक नयी वस्तु है। परमानन्दमय हो जाने के लिए महाराज पलकनिधि ने सद्‌विचार,

सद्विवेक दृष्टि, त्याग, सद्व्योहार, ज्ञान प्रकाश के प्रेम सौन्दर्य में परमानन्द सोपानों की सरल और सरस अभिव्यजना की है तथा ये सारतत्व हमें अपने लक्ष्य तक बेरोक–टोक ले जाने वाले है। इस पुस्तक के पढ़ने से साकारत्व के सामने निराकारत्व सरस हो जाता है और हम अपने आपको समझने लगते है।

अन्त में हम लाला घूरेमल, गिरधारी लाल सरार्फ बहराइच को धन्यवाद देते है जिन्होनें इस पुस्तक के प्रकाशन में अपने धन का सदुपयोग किया है। हमारा ध्येय यही होना चाहिए कि हम लोग कल्याण कहां तक कर रहे है। यह एक पथ है जहां से परमानन्द तत्व बोध होने लगता है।

हमारी सामर्थ्य कहां कि हम इस सन्त वाणी का पूरा परिचय दें। यह तो सद्गुरूदेव की कृपा है कि मैंने कुछ लिख दी।

महसो राज्य

बस्ती

20.09.42

रामलाल श्रीवास्तव बी0ए0

श्रीहरिः शरणम्

परमानन्द की ओर

अपने पथ के पथिकों से

आनन्द। आनन्द।। आनन्द।।।

आज जिनकी महती कृपा, बल द्वारा विनाश के पथ से लौट कर जीवन की ओर यात्रा करते हुए इस प्रशान्त भूमि में खड़े होकर शान्ति की सांसे ले रहा हूँ, उन परम दयालु आनन्दमय सद्गुरू देव परमात्मन्! को बारम्बार नमस्कार है। इस स्थल पर मैं जिस प्रकाश से अपने को घिरा पाता हूँ– इसके पूर्व मैं अपने उस संसार में इससे सर्वथा वछिंत ही था, जहां कि मानव समाज इस प्रकाश के बिना ही अंधकार में कितनी लम्बी दौड़ धूप कर रहा है, और पग पग पर असफलता की चोटों से आहत होकर कहीं भाग्य को, कहीं अपने समीपवर्ती संसार को बुरी तरह कोस रहा है। ओह! कितनी करूणाजनक दीन अवस्था है। कितना दुखद् कन्दन है। कितनी अशान्ति से भरी हुई आहों की स्वासोच्छ्वासें है। साथ ही उस अंधकार में पाशविकता का नग्न नृत्य है। कितनी कान्त्योत्पादक कलह है। यह सब कुछ मुझे स्थल पर आने से स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है। कुछ ऊपर दृष्टि उठाने पर मुझे यह भी दिख रहा है कि मेरे ही समान कितने ही पथिक इस परम लक्ष्य की ओर कोई मन्द गति से, तो कोई तीव्रता से बढ़ रहे है। मैं जिधर दृष्टि डालता हूँ उधर ही अपनी अपनी दिशा स्थल से परम लक्ष्य की ओर झुण्ड के झुण्ड या अकेले ही यात्रा करते हुए, कुछ पथिक तो बहुत आगे बढ़ गये है, कुछ लोग हमारे ही निकट आगे पीछे दिख रहे है। मेरी दृष्टि कुछ ऐसे लोगों पर भी पड़ रही है जो हमारे ही पद चिन्हों को देखते हुए यात्रा शुरू कर रहे है। या कुछ ऐसे भी है जो खड़े होकर अपनी जगह से मुझे देखते हुए मानों अपनी अधीरता, आकुलता, उत्सुकता को मूक वेदना द्वारा प्रगट कर रहे है।

ऐ मेरे मित्रों! क्या तुम मेरी आवाज सुनते हो? मैं तुम्हीं से कह रहा हूँ। क्या तुमने कभी यह सोचा है कि इस जीवन का लक्ष्य क्या है? ध्यान देने पर तुम स्पष्ट समझ सकोगे कि यह मानव जीवन धारण करके बाल्यावस्था से आज तक नाना प्रकार

के खेल कौतुकों में विविध रूप के स्वांग बना बना कर नाना प्रकार के अभिलषित सम्बन्धों को रच रच कर, इतनी लम्बी दौड़ धूप केवल आनन्द के लिए करते हो जाने क्या क्या बनाते बिगाड़ते हो– तुम आनन्द ही के लिए किसी भी पदार्थ की ओर किसी भी दशा में दौड़ते फिरते हो पर आज तक सत्य आनन्दाधार न मिला न उसका पथ ही मिला अपनी समझ में बड़ी लम्बी यात्रा कर डाली पर आंख खुली हो तो देखो कि कोल्हू के बैल की तरह उसी जगह पर चक्कर काटते रहे, इसी प्रकार तुमने आज कितने ही प्रकार के चमकते दमकते हुए देखने में मनोहर पदार्थों को लोभबस संग्रह कर रक्खा है, और उनकी प्राप्ति में बड़े गर्वित हो– पर किसी सुजान पारखी के सामने तुम्हें पता चलेगा कि वह सब कांच की तरह झूठी चमक–दमक से तुम्हें धोखा दे रहे है, उनमें कोई भी रत्न मणि हीरा नहीं है। इसी प्रकार अनेकों बार तुम विशाल वैभव ऐश्वर्य भोगों के बीच आमोद–प्रमोद की विलास सामग्री का उपभोग करते हो। हर्ष अभिमान से उस समय दीन दुनिया सभी को भूल जाते हो। तो इसके विपरीत कभी तुम दरिद्रता, दुखों के भार से दब कर जगह जगह प्रसार पदार्थो के लिए, कभी कगांल बनकर घोर दुःख भोग करते हो और कभी राजा महाराजा सम्राट–पद के ऐश्वर्य सुखों को भोगते हो। पर, जब सद्गुरू कृपा से ज्ञानरूपी प्रकाश द्वारा विवेक दृष्टि खुलेगी, तब तुम्हें पता चलेगा, कि यह सब अज्ञान निशा में मोह नीद से घिरे हुए स्वप्न देख रहे थे। जब तक जागते नहीं हो तभी तक यहां के भौतिक सुखों दुखों की सत्यता का विश्वास दृढ़ है। पर, जागने पर सभी असत्य प्रतीत होगा।

अरे पथिक! तुमने आज किन किन पदार्थों को आनन्दाधार बनाया। पर, अभी तक उस आधार को न पा सके, जो अविनाशी हो।

अगणित नाम रूपों को जन्म जन्मान्तरों से धारण करने और छोड़ने वाले पथिक रूप में अविनाशी आत्मन्! सावधान होकर सुनो! और देखो!

तुमने अनेकोनेक आधारों को कल्पित कर कितनी विधियों से सभी दिशाओं में, लोक लोकान्तरों में जिस आनन्द की खोज अभी तक की है और आज भी जिसको इध ार उधर झांकते फिरते हो–ध्यान देकर सुन लो उस आनन्दाधार का सच्चा पता बताने

वाले आनन्द स्वरूप सद्गुरूदेव महात्मा सन्तजन है। मैं इन्हीं गुरूदेव के चरणोपान्त बैठकर अपने परम लक्ष्य का ज्ञान जो कुछ प्राप्त कर रहा हूॅ–उसे तुमको भी बताना चाहता हूॅ–क्योंकि मैं भी तो पथिक हूॅ।

ऐ श्रान्त, कृान्त, भ्रान्त पथिक! अरे जिसकी खोज में तुम इतना भटक रहे हो–वह तो तुम्हारे निकट से निकट ही है, सावधान होकर पीछे लौटो–तुम्हें पता चलेगा कि वह आनन्दधार मेरे जीवन का जीवन प्राणों का भी प्राण मेरे अन्तर–बाहर व्यापक सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा है। यही है तुम्हारा लक्ष्य। यही है परमानन्द स्वरूप। यहीं पर है तुम्हारी परम मुक्ति। यहीं पर है अभाव का अभवा। और पूर्णता की पूर्णता है। यहीं है आनन्द आनन्द। यही जीवन का जीवन। प्यारे पथिक, आओ अब देखों इस परमाधार परम लक्ष्य का पथ क्या है?

प्यारे पथिक अब इस समय तुम अपनी सम्पूर्ण यात्रा का चित्र देखो। सावधान होकर समझलो। सद्विचार ही इस परमलक्ष्य परमानन्द का पथ है और सद्विवेक ही इस पथ के देखने की दृष्टि है और त्याग ही तुम्हारे साथ एक दिव्य अस्त्र है, जिसके द्वारा तुम अपनी यात्रा में चलने के पहले अपने ऊपर नीचे आगे पीछे की तमाम तरह की कठिनाईयों को द्वन्दोंको, दुखों को बन्धनों को दूर कर सकोगे पग पग पर इसी त्याग अस्त्र के बल पर तुम चल सकोगे। और इस पथ में चलते हुए आगे सद्व्योहार रूपी साधन बल है, जिसके द्वारा तुम तमाम प्रकार की शक्ति स्फूर्ति पवित्रता एवं सद्गुण रूपी सम्पत्ति से धनी हो सकोगे। पुनः यह सब कुछ होने पर भी अभी तुम अंधेरे ही में रहोगे। आगे ज्ञान रूपी प्रकाश प्राप्त होता है। उसमें पहॅुच कर सर्वज्ञाता बनोगे। उसी प्रकाश में चलते चलते ऊंचे स्तरों में तुम्हारी पहॅुच होगी तभी वहां प्रेम के सौन्दर्य से परमानन्द का पूर्ण बोध होगा। बस वहीं प्रेममय परमानन्द स्वरूप परमात्मा में तन्मयता प्राप्त करोगे। परन्तु ऐ मेरे उत्सक साथी। यात्रा का सम्पूर्ण चित्र देखकर तुमने परमानन्द की प्राप्ति सरल की समझी होगी पर पता अब चलेगा जब तुम इस पथ में कदम बढ़ाना शुरू करोगे। हां! तो क्या तुम मेरे साथ

चलना चाहते हो? परन्तु तुमने अभी मुझे समझा ही क्या है। प्यारे पथिक तुम्हे देखकर हर्ष एवं कौतूहल से यह हदयोद्गार निकल रहा है। सावधान होकर सुन तो लो।

(हर्षगान)

मै हूॅ पथिक सखे तुम मुझसे समझ बूझ कर प्रीति बढ़ाना।।
फिर मत कहना आगे चल कर मैनें तुम्हें नहीं पहिचाना।।
यदि तुम मेरे सच्चे प्रेमी हो, तो संग में कदम बढ़ाओ।
मैं जैसा हूॅ तुम भी वैसा अपना अन्तर रूप बनाओ।
कुछ भी हो निजभाग्य परिस्थिति कभी न अपना लक्ष्य भुलाओ।
ऐसा न हो कहीं कुछ लालच बल तुम पीछे ही रह जाओ।
तब तो अति ही दुष्कर होगा खो करके मुझको फिर पाना।।मै0।।
यदि तुम अपने मनमे कुछ दुनियाबी ममता प्यार लिये हो।
और साथ ही मान शान के पद उपाधि अधिकार लिये हो।
अपने जीवन रक्षा के हित धन वैभव का भार लिये हो।
सत्य विमुख क्षणमडर मायामय यदि तुम आधार लिये हो।
तब तो मेरे संग में तुमको अति दुर्गम है पैर उठा।।मै0।।
कितने मुझको मिले छुट गये कुछ अब छुट जाने वाले है।
कुछ संग में चलने को प्रेमी आगे भी आने वाले है।
कुछ आलस्य प्रसाद भ्रान्त है जो ठोकर खाने वाले हैं।
कुछ अपने पुरूषार्थ प्रेम का पुरस्कार पाने वाले है।
यह तो बड़ी दूर की मंजिल गिर गिर उठना चलते जाना।।मै0।।
इस पथ के चलने वालों में किसी किसी को सोते देखॅू।
कभी किसी को दुखद स्वप्न से भय बस जाग्रत होते देखॅू।
कहीं कहीं पर आतुरता से अपना सर्वस खोते देखॅू।
पुनः कहीं नैराश्य निशा में कुछ लोगों को रोते देखॅू।
मैं भी इन पथिकों में ही हॅू पर अपनी धुन में दीवान।।मै0।।

यह तो निश्चित ही है प्रियवर इसी राह से चलना होगा।
इस अमूल्य अवसर को खोकर फिर पीछे पर मलना होगा।
माया के इस बन्धन दुख से फिर भी तुम्हें निकलना होगा।
पड़े रहोगे जब तक इसमें चिन्तानल से जलना होगा।
तब तो यही उचित है साथी अब कायरपन मत दिखलाना।।मै0।।
मेरा तो अपनी गति में ही चलते रहना यही काम है।
जहां किया विश्राम कहीं पर तनिक देर को वही धाम है।
इसी तरह से बीत रहे दिन कहीं सुबह हैं कहीं शाम है।
ठहर न सकता अधिक देर तक इसलिए तो पथिक नाम है।
इस अनन्त के पथ में मेरा कोई निश्चित नहीं ठिकाना।।मै0।।
मैं हूॅ पथिक सखे तुम मुझसे समझ बूझकर प्रीति बढ़ाना।।

प्यारे पथिक? यदि तुम सच्चे प्रेमी हो तो आओ बढ़े आओ बाहरी रूप तुम्हारा चाहे जैसा हो पर, तुम्हें अपना अन्तर रूप तो परमार्थ के पथिकों जैसा ही बनाना होगा और भाग्य परिस्थिति चाहे जैसी हो पर अपने लक्ष्य पर सदा दृष्टि रखो, यदि तुम कहीं इधर उधर की ओर देख कर लालच में पड़े तो बस फिर आगे बढ़े हुए पथिक को पाना कठिन होगा। एक बात और ध्यान देने की है– इस पथ में तुम तभी चल सकोगे जब दुनिया के सम्बन्धों में ममता प्यार रूपी बन्धनों से तुम मुक्त हो जाओ और हर एक वस्तु की लालसा को, सम्मान को, शान को, गौरव उपाधि और जीवन रक्षा की चिन्ता आदि बातों को भार रूप समझ कर समस्त मायामय आधारों से अलग हट कर एक परमाधार परमात्मा की ओर चल पड़ो। ऐसा न करने पर तुम पैर न उठा सकोगे। इस राह में तो कितने ही लोग साथी मिलते है, कितने ही मिलकर छूट जाते है और कुछ चलते चलते थक कर आलस्य प्रमाद से असावधान होते ही ठोकर भी खाते है। कुछ अपने पुरूषार्थ का पुरस्कार भी पाते है। कोई कोई कुछ दूर चल कर माया मोह की नींद में सो भी जाते है और प्राख्यजनित दुखों की ठोकर लगते ही फिर होश में आकर बड़ी जल्दी त्याग तप शुरू कर देते है और पुनः आगे निराशा की अंधि

ायारी में बैठकर रोते भी पाये जाते है। मेरे आगे भी यहीं समस्यायें आती है। पर अपनी धुन में दीवाने पथिक तो चलते ही रहते है। प्यारे साथी! यदि तुम न भी चलो तो कब तक? अन्त में माया बन्धन दुखों से निकलना ही पड़ेगा। तब इधर जितना समय खो दोगे उसका पश्चाताप ही तो होगा? अतः अब कायर न बनना, कहीं रूक न जाना, ऐ पथिक आओ अब अपने परमानन्द लक्ष्य की ओर चलने का पथ जो सद्विचार है उसी जगह चलो। पथिक? सावधान होकर समझो।

आओ प्रथम भगवान सद्गुरू देव की मण्डल कारो स्तुति करते हुए इस शुभ मुहुर्त को और भी परम शभ बनावे।

सद्गुरू स्तवन

आनन्द की खोज में भटकता हुआ

पथिक गुरूदेव के सन्मुख मुमुचु रूप में

अब हम पर तुम दया करो गुरूदेव जी।।

कितने दिन से भटक रहे है, दुख के कांटे खटक रहे हैं।

कहां कहां हम भटक रहे है करूणाकर मम हाथ धरो।।गुरू0।।

मैं आचार विचार हीन हॅू, निर्बल हॅू अतिशय मलीन हॅू।

यही विनय सबभांति दीन हॅू, मोहि न परखो खोंट खरो।।गुरू0।।

शील धर्मकी बात न जानी, अपने स्वारथ की ही ठानी।

करते रहे यही मनमानी, सदा कुसडगति में बिगरो।।गुरू0।।

यह बिगड़ी किस भांति बनाऊॅ, स्वामिन् तब ढिग कैसे भ्राऊ

लज्जित हॅू क्या मुॅह दिखलाऊॅ, महा पतित मैं पाप भरो।।गुरू0।।

तुम ही मेरे सद्गति दाता, तुमही पिता तुम्ही हो माता।

तुमही सरबस, सबविधि त्राता, आज हमारे क्लेश हरो।।गुरू0।।

हे प्रभु पावन प्रेम दान दो, जीवन मुक्ति द शान्तिज्ञान दो।

परमानन्द स्वरूप ध्यान दो, पथिक तुम्हारी शरण परो।।गुरू0।।

ओउम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

श्री सद्गुरू चरण कमलेभ्यो नमः

ऐ जिज्ञासु पथिक? तुम्हें यह तो विदित ही हो चुका है कि मनुष्य का ही नही वरन् प्राणी मात्र का लक्ष्य है दुख का सर्व प्रकार से अभाव और सुख में निरन्तर स्थिति। तो वह अविनाशी सुख–परमानन्द कहां प्राप्त होगा? ध्यान देकर समझो। वह परमानन्द केवल पूर्णता में ही मिलेगा। अभी तक तुमने जितने आधारों को आनन्द प्राप्ति के लिए पकड़े, वे सभी अपूर्ण ही है, जब तुम पूर्णतत्व को समझ लोगे तभी पूर्णानन्द के दर्शन भी होगें। अब यह भी देख लो कि वह पूर्णतत्व है क्या? सोचकर सद्गुरू के महावाक्यों में ध्यान दो। वह पूर्णतत्व अखण्ड रूप से व्यापक चितसत्ता ही पूर्ण है, और वह चितसत्ता तुम्हारे भीतर बाहर ओत प्रोत है। यह चितसत्ता ही परमानन्दमय है, अखण्ड–अनन्त, अव्यय अविनाशी है। इसी का बोध प्राप्त होने पर परमानन्द की प्राप्ति और दुख की निवृत्ति है। अब आगे बढ़ो। देखो। बहुत ही सारगर्भित प्रसंग है। ध्यान देकर इस विषय को समझते चलो।

एक अखण्ड अनन्त अविनाशी परमतत्व जो परमानन्दमय है, जो अखिल विश्व का परमाधार है, को प्रेम पथिक जन अपने अपने भावानुसार भिन्न भिन्न नाम रूप मय देखते है, इतने पर भी वह परमानन्दमय परमतत्व नाम रूप से भी परे है। वह जो कुछ है विलक्षण है। प्यारे पथिक! मैं जो कुछ अपनी यात्रा का चित्र पथ दृष्टि साधन, बल अभ्यास, प्रकाश, सौन्दर्य से सुशोभित परमानन्द प्राप्ति बता चुका हॅू उसके साथ साथ आप चौंक पड़ेगे कि इतनी लम्बी यात्रा में आरम्भ से लेकर परमानन्द स्वरूप की प्राप्ति तक ये बातें तो बीच में दिखती ही नहीं जो प्रायः सभी ओर से आवाजें आ रही हैं कि परमानन्द प्राप्ति के लिए कीर्तन करो, पाठ करो, पूजा करो, जप करो, तप करो, व्रत करो, तीर्थ यात्रा करो, संतो महा–त्याओ की सेवा करो, यज्ञ दान पुण्य करो इत्यादि साधन तो मेरे कथन में दिखाई ही नहीं देते। और परमानन्द का स्वरूप दिख दिया गया। प्यारे पथिक! सावधान होकर समझ लो कि निसन्देह पाठ पूजा कीर्तन स्मरण जप, तप, दान, पुण्य आदि अनेकानेक परमानन्द प्राप्ति के एवं भगवद् प्राप्ति के साधन है, परन्तु मैं देख रहा हॅू कि पाठ करते हए जप, तप, व्रत, पूजा, स्तुति,

तीर्थ यात्रा अनेकानेक, साधन करते हुए वर्ष के वर्ष बल्कि जीवनभर योंही समाप्त होता है पर वास्तविक शान्ति अभी प्राप्ति नहीं होती। दुखों का सर्वथा अभाव नहीं होता। मैं अनेक पथिकों को इसी प्रकार एक जगह पर रूके हुये या इधर उधर भटकते हुए देख रहा हूँ। तभी मैंने इस वेदना से चिहल्ल होकर अपने आगे सुदूर पर पहुँचे हुए संतों महात्माओं पर दृष्टि डाली। परमकृपालु सद्गुरू देव की महती कृपा से मेरे सामने यह भेद खुला कि जप, तप, पाठ पूजा अन्यान्य साधन करते हुए भी जब हम सद्विचार रूपी पथ न मिलेगा और उस पर भी सद्विवेक दृष्टि न खुलेगी और पुनः त्याग रूपी अस्त्र न उठाया जायेगा तदुपरान्त सद्व्योहार रूपी साधन से अभ्यास बल न बढ़ाया जायेगा और उसके बाद ज्ञान रूपी प्रकाश में जब तक न पहुँचा जायेगा, तब तक प्रेम सौन्दर्य से परम सुशोभित परमानन्दमय परमात्मतत्व का साक्षात्कार न होगा। अतः प्यारे पथिक इस प्रकार संतो, महात्माओं एवं सदगुरू देव के इस गूढ आदेश को सुनकर समझकर, आप सबकी सेवा में भी इसे अर्पण कर रहा हूँ कि यह भजन, कीर्तन, जप, पाठ, पूजा जब उपरोक्त पथ द्वारा चलते हुए, देखते हुए, करोगे तभी सत्य शान्ति प्राप्त होगी, तभी दुख की प्रत्यक्ष निवृत्ति हो जायेगी। तुम जप, तप, व्रत, पूजा, पाठ करते हुए भी यहां भटकते हुए रोते हुए दीन दुखी न पाये जाओगे। वास्तव में अभी तक माला फिराते हुए, पूजा पाठ करते हुए भी इसी लिए दुख न मिटे कि तुम्हें सत्पथ की अभी तक प्राप्ति नहीं हो सकी। अब पथिक, सावधान होकर चलो, आगे बताये जाने वाले सद्विचार पथ में विवेक दृष्टि से देखकर यात्रा करते हुए कीर्तन, जप, तप, व्रत सभी सार्थक होते देखोगे। सद्व्योहार के द्वारा हृदय, अन्तःकरण शुद्ध होने पर ज्ञान प्रकाश में प्रेम सौन्दर्य से शोभित परमानन्दमय परमात्मा की प्राप्ति होगी।

सद्विचार

परम शुद्ध वेतन आत्मा का जब बुद्धि के साथ संयोग होता है तब वहीं अंह का जन्म होता है।

यही अंह मन प्राण इन्द्रिय देहादिक उपाधियों के साथ सद्रूपता धारण कर लेता है, और उपाधिगत गुण धर्मों का अभिमानी होकर तदनुसार कर्मो का कर्ता, झोका बनता है। यही हैं बन्धन। इसी से है जन्म मरण का दुखद दृश्य। और इससे छूटना ही मुक्ति तथा परमानन्द की प्राप्ति है। इस मुक्ति एवं परमानन्द प्राप्ति का पथ है सत्याभिमुख विचार। मनुष्य अपने ही विचारों द्वारा सत्य, शान्ति, सुख और स्वर्ग की ओर गतिशील होता है, और अपने ही दूसरे प्रकार के विचारों द्वारा अधोगति को प्राप्त होता है।

निष्कर्ष यही निकल रहा है कि नर्क और स्वर्ग के पथ केवल तुम्हारे विचार ही है। पाप या पुण्य की ओर प्रकाश या अंधकार की ओर, तुम अपने विचार पथ द्वारा ही यात्रा करते हो। ध्यान रहे कि तुम्हारे विचारों में जिस प्रकार के गुण रहते है उन्हीं गुणों से रंगे हुए वातावरण से तुम अपने को घिरा पाओगे।

तुम्हारे विचारों से ही अपवित्रता रूपी दुर्गन्ध फैलती है। पवित्रता रूपी सुगन्ध फैलती है। दुर्गन्ध से तो आस पास के लोगों के मस्तिष्क को गन्दे करने के तुम्ही अपराधी बनते हो और यदि सुगन्ध फैलाते हो तो अपने निकटवर्ती संसार के मस्तिष्क को तुम प्रफुल्लित और स्वस्थ बनाने के पुण्य भागी होते हो।

आज तुम अपने भीतर जैसा कुछ स्वभाव, गुण पाते हो वह तुम्हारे ही किसी समय के विचारों का फल है। इसी प्रकार तुम्हारा भविष्य भी आज के विचारों पर निर्भर है।

तुम अपने विचारों से घटनाओं के निकटवर्ती पदार्थो को जिस तरह ढकते रहते हो उसी तरह दूसरे की आत्माओं को भी अपने ही विचारों का आचरण पहना कर देखते हो। तुम्हारे विचारों की शक्तियां ही तमाम बातों को स्वरूचि पूर्वक रूप दिया

करती है। तभी तो सूक्ष्मदर्शी महात्माओं को दीखता है कि यह विश्व विचार का ही विकार है।

तुम अपने जीवनोद्वेश्य को तभी सफल बना सकोगे, जब कि अपने सम्पूर्ण विचार प्रवाह को उद्देश्य की हो ओर लगा दोगे। तुम अपने विचारों से अलग नहीं हो सकते क्योंकि मन का विचारों के साथ अभिन्न सम्बन्ध है। परन्तु विचारों के परिवर्तन से तुम भिन्न भिन्न पथगामी हो सकते हो।

अज्ञानी तो बिना सोचे समझे अपने विचारों के पथ से चलता है पर ज्ञानी विवेक दृष्टि से अच्छे पवित्र विचार पथ पर यात्रा करता है। तुम्हारे समस्त कार्य तुम्हारे ही भले या बुरे विचारों के चित्र है जो पहले मन में छिपे थे फिर आज दृष्टिगोचर हो रहे है। इसी प्रकार तुम्हारा भविष्य आज के विचारों की नींव में गठित हो रहा है।

तुम उसी पदार्थ को (चाहे वह किसी भी क्षेत्र का हो) अपनी ओर आकर्षित करते हो जिसके लिए तुम्हारे अन्तर में विचार होते रहते है। प्रेममय विचारों के द्वारा तुम अपने प्रमास्पद को आकर्षित करते हो और इसी प्रकार भ्रम एवं द्वेष विचारों द्वारा शत्रु को अपनी ओर पथ देते हो।

किसी भी प्रकार के विचार गुप्त नहीं रक्खे जा सकते। विचार अपनी गति से शीघ्र ही स्वभाव रूप में परिणत होते है और स्वभाव क्रिया कर्म रूप में प्रकट हो कर तद्नुसार तुम्हारे आगे फल ला देते है। तुमको उनका झोका बना देते है।

तुम्हारे विचारों से शत्रु भाव या मित्र भाव का जन्म होता है। विचारों के असर से ही तुम मित्रता को शत्रुता में और शत्रुता को मित्रता में परिणत कर सकते हो। कोई भी पदार्थ या कोई भी सम्बन्धी जो आज अपने विचारों के अनुरूप एक और प्रकार का दृष्टिगोचर होता है वहीं तुम्हें विचारो के बदल देने से दूसरे ही प्रकार में बदलता हुआ दिखाई देगा।

किसी के प्रति सद्भावना, सद्विचार रखना उसके साथ परम उपकार करना है, क्योंकि पवित्र विचारों से शान्तिप्रद शक्ति प्रस्फुटित होती रहती है, जिससे अपनी ही नहीं वरन् दूसरे की उन्नति होती रहती है।

इसी प्रकार किसी के प्रति कनिष्टकर बुरे विचार मन में रखने से उसकी बड़ी हानि का कारण बनना है। किसी के प्रति बुरे कनिष्टकारी विचारों में भयंकर कनिष्टकारी शक्ति रहती है। इस नियम से मनुष्य विचारों द्वारा कहीं किसी के साथ परम उपकार करता है कहीं क्रूर अपवित्र विचारों द्वारा किसी के प्रति कनिष्ट करता है।

तुम्हारे विचारों में, तदनुसार शब्दों में और तज्जनित कर्मो में ऐसी शक्तियां है कि जिनका असर दूसरों पर अवश्य होता है तुम अपने विचारों, शब्दों एवं कर्मों की शक्तियों द्वारा संसार का हित या अहित करते रहते हो, अतः सावधान होकर निरन्तर केवल विचारों को ही अन्तर हृदय में स्थान दो। बुरे कनिष्टकारी विचारों का अपनी पूरी शक्ति से विरोध करो कि वे मन में निश्चित भी स्थान न पावें। उनकी झलक आते ही तेजी से ललकार कर सामना करो कि तुरन्त वापस जावें। अनुभवी महात्माओं का कहना है कि कोई भी अशुद्ध भावविचार मन में आकर यदि दस मिनट भी रूक जाये तो उसका असर सूक्ष्म शरीर पर 47 घण्टे रहा करता है।

स्मरण रहे कि तुम अपने ही विचारों, अभिलाषाओं द्वारा अपनी वर्तमान या भविष्य सृष्टि रचते रहते हो और बिगाड़ते भी रहते हो।

यदि तुम दुखी होना पसन्द नही करते, तो निरन्तर पवित्र सुखदाई विचारों से ही अपने को भरे रहो—निराशा, भय, घृणा, द्वेष आदि से भरे हुए विचारों को कभी न आने दो।

यदि तुम पवित्र परोपकार पूर्ण भावमय विचारों से अपने को तन्मय रखोगे तो शीघ्र ही वे विचार तुम्हारे बाह्य जीवन में अच्छी दशाओं का रूप धारण करेगें।

आपका हर एक विचार अपनी शक्ति से अनुकूल दिशा में फैलकर अपना प्रभाव डालता है और उधर से अपने रूप के अनुसार उसी प्रकार का बल लाता है जिससे विचारानुरूप गुण धर्म की पुष्टि होती है।

जितने भी पवित्र स्वार्थरहित विचार हैं–वे तुम्हारे लिये शान्ति और प्रसन्नता के लाने वाले दूत है।

तुम्हारें विचारों में जिस प्रकार के गुण–धर्म, पूर्ण आदर्श होगा–उसके चिन्तन, मनन से तुम में उसी प्रकार के गुण–धर्म स्वभाव पुष्ट होकर चरितार्थ होंगे। इसलिए निरन्तर पवित्र मार्गदर्शकों ही अपने विचारों में स्थान दो। तुम वैसे ही बनोगे।

विचारों की उत्तम प्रवृत्ति से ही शान्ति सुखपूर्ण भविष्य बनता है। अतः तुम अनुचित दुर्गुणोत्पादक विचारों का दमन करो। सारी शक्ति से उनका बहिष्कार करों। तभी तुम वीरता से विजयी हो सकोगे। तुम अपने विचारों से स्वयं नियंत्रित होकर मूर्ख मत बनो वरन् विचारों में स्वेच्छित विधि से नियंत्रण रों यही तुम्हारी बुद्धिमानी होगी।

यदि तुम अपने मन में स्वार्थपरता से भरे अपवित्र कुविचारों को स्थान देते रहोगे तो इसके दुष्परिणाम को किसी प्रार्थना से, दान से, यज्ञ से, दूर नहीं कर सकते–कुविचार के कुफल को केवल सद्‌विचारों से निराकरण करते हुए तुम अपना भविष्य उज्जवल बना सकोगे। कुपथगामी जीवन का उद्धार केवल पवित्र विचारों द्वारा ही हो सकेगा।

जिनके विचारों में सद्‌गुणों की सचेतन मूर्ति खेलती हैं, विजयी जीवन केवल उन्हीं का देखा जाता है।

निरन्तर पवित्र विचारों द्वारा ही बोध का द्वार खुलता है।

यदि तुम्हारे विचार दृढ़, शक्तिपूर्ण है तो तुम अपने समीपवर्ती सजीव या निर्जीव संसार में अपने विचारों का ही प्रभाव डालते रहते हो, और यदि तुम्हारे विचार दृढ़ निर्बल है, तो तुम अपने समीपवर्ती संसार के विचारों से प्रभावित होते रहते हो। तुम जो कुछ भी हो अपने ही विचारों के फल स्वरूप हो।

तुम अपने किसी भी प्रकार के उद्देश्य में तभी सफल हो सकते हो जब कि अपने सम्पूर्ण विचार प्रवाह को अपने उद्देश्य के लिए ही प्रवाहित कर दो। जैसा बनना चाहते हो, वैसे ही विचारों से अपने हृदय को भर दो।

यदि तुम्हें किसी बुरे विचार की जगह पवित्र विचार की आदत बनानी हो तो तुम तद्नुरूप पवित्र आदर्श के विषय में ही विचार करते रहो—इससे तुम्हें अपने विचार में दुर्गुण—दुर्गन्ध की जगह सद्गुण सौरभ प्राप्त होगा।

जिस तरह तुम अपने विचारों से सम्बन्धित इस भौतिक संसार की किसी भी वस्तु को किसी न किसी दिन प्राप्त कर लेते हो उसी प्रकार अन्यलोकों के अलौकिक पदार्थों को भी तुम अपने विचार पथ द्वारा ही प्राप्त करते हो।

देवलोक में अदृश्य देवताओं से भक्ति के विचारों द्वारा ही सम्बन्ध स्थापित होता है, और वे शक्तियों विचार पथ द्वारा आकर्षित होकर तुम्हारी सहायता करती रहती है।

विचारों के द्वारा ही तुम या तो अदृश्य वायुमण्डल में देव रूपों की सृष्टि करते हो या शैतान की मूर्ति गढ़ते हो। देव रूपों से सबका हित होता है और असुर रूपें से अहित होता है। तुम अपने रचित विचार रूपों को तदनुकूल सम्बन्धियों के पास भेजते रहते हो।

विचारों का रूप होता है और रग भी होता है, यह रूप दिव्य दृष्टि वाल महापुरूषों को स्पष्ट दिखता है, सुन्दर विचारों का रूप भी मनोहर रंग रूप में सुगठित होता है और भयानक विचारों का रूप रंग भी भयानक भद्दी आकृति प्राकृतिक होता है।

यह मनुष्य का चेतन आत्मा वास्तव में चार शरीरों को लिए हुए पूर्णतः मनुष्य रूप में दृष्टिगोचर होता है। तुम्हारी एक स्थूल देह, वासनात्मक देह, मानस देह, विज्ञान मय देह, सब आनन्दमय आत्मा का चेतन स्वरूप है। ये चारों देह चार लोकों की प्रकृति की बनी है, तदनुसार जिस लोक की प्रकृति से बनी देह के विचार होते है, उन विचारों का रूप भी उसी लोक से उसी शरीर से अपना सम्बन्ध रखता है। विज्ञानमय शरीर में जो विचार रहते है, वह सत्य आत्म ज्ञान के विचार होते है, उनका

रूप अति सुन्दर कोमल और रंग पीला होता है, स्वर्णवत् दिव्य देव आकृति के विचार रूप सुगठित होता है। इसी प्रकार मानस लोक की प्रकृति के मानव शरीर में जब विचार प्रधान होते हैं, तो उनका सद्गुण स्वरूप भक्ति भावमय विचारों के रंग का सुन्दर रूप होता है। इसलिए सोच कर देखों भक्तों की भक्ति, चूंकि अधिकतर कृष्ण या राम के प्रति होती है तो भक्त के भावमय भगवान का रूप चित्रों में नीले रंग का दिखाया गया है। साथ ही इन महानपुरूषों के चित्रों में एक खास बात और दिखाई जाती है वह यह कि सिर के आस पास पीले रंग के स्वर्ण की तरह प्रकाश किरणें छिट्की रहती है। यह दिव्य ज्ञान के विचारों का रंग रूप है और प्रेम प्रधान विचारों का रूप रंग हल्का गुलाबी रहा करता है। यह रंग निःस्वार्थ प्रेम के विचार रूपों का है। सहानुभूति पूर्ण विचारों का रंग हरा होता है।

तुम्हारे विचार जब तक केवल देह इन्द्रिय मन के स्तर में केवल विषय सुखाभिलाषा से भरे है तब तक विचार रूप अत्यन्त कुरूप भद्दे राक्षस, प्रेम, दानव, शैतान की सी आकृति के होते है जो तुम्ही को चूसने वाले और तुम्हारी शक्ति से पुष्ट होकर तुम्हारे निकटवर्ती संसार में बुरा प्रभाव डालने वाले होते है। इस क्रम में तुम संसार का कनिष्टकारी सिद्ध होते रहते हो। तब तक तुम स्वयं सुख शान्ति के अधि ाकारी न हो सकोगे, जब तक अपने विचारों में यह भयानक क्रूरता पोषित करते रहोगें। परन्तु जब तुम्हारे विचार इस स्थूल देह और वासनात्मक देह से ऊपर उठ कर मानव शरीर में सद्गुणाकृति धारण करते है बस तभी से तुम शान्ति सुख की सुनहली किरणों से चमकने लगते हो।

तुम्हारे विचारों में जितनी ही दया करूणा सहानुभूति बढ़ती जाती है तुम जितना ही परोपकार परायण भक्ति श्रद्धा भाव से अपने हृदय को पूर्ण पाते हो, उतने ही अंशों में तुम्हारे द्वारा ऐसे विचारों के देव रूप संसार के हितकारी सिद्ध होते है कि तुम अनायास हो परमपुण्य के भागी होते जाते हो। तुम्हारे विचारों से उसी प्रकार मनोहारी सौरभ अनायास बहता रहता है जिस तरह किसी सुन्दर सुमन से सुगन्ध बहती है पर

पुष्प को यह गर्व नहीं होता कि मेरी सुगन्ध से लोग लाभ उठा रहे है वह खिलता है, सुगन्ध स्वभावतः फैलती है।

तुम अपने विचारों द्वारा ही या तो स्थूल विनाशी जीवन की सेवा करते हुए पुष्ट कर रहे हो, या अपने अन्तर शरीरों को जो देव लोक प्रकृति से बने है बलवान बना रहे हो।

स्मरण रहे तुम जिस शरीर को विचारों द्वारा क्रिया कर्म शील बनाओगे उसी शरीर के द्वारा तुम्हारा सुख स्वार्थ सिद्ध होगा। अतः यदि तुमने मानव रूप में अपने अन्तर शरीरों को विचारों द्वारा सद्भावनाओं, सद्गुणां एवं सदुज्ञान से पुष्ट नहीं किए, उन्हें क्रिया शील बनाकर भौतिक जीवन से परे उठ कर यदि तुम देवी प्रकृति में चेतना जाग्रत नहीं कर सके तो याद रहे तुम यहीं के जन्म मरण चक्कर में पड़े रहोगे। पशुवत स्थूल जीवन का ही भोग करते हुए अधः पतित होते रहोगे।

अतः अपनी भौतिक व्यक्तिगत लालसाओं, इच्छाओं पर विजयी होकर परोपकार पूर्ण सद्कृत्यों, सद्भावनाओं द्वारा अपने को इस भौतिक देह इन्द्रिय सुख वासना के कारागार से मुक्त कर लो, सदा आदर्श का विचार करो तुम वैसे ही बन जाओगे।

यह विचार प्रवाह बुद्धि से ज्ञान रूप में, मन से सद्भाव गुण रूप में और प्राण इन्द्रियों से वासना रूप से दिखाई पड़ता रहता है।

निःस्वार्थ प्रेम के विचारों से दया, करूणा, सहानुभूति का सुन्दर रूप बनाकर तुम अपने को तो देवी आनन्द के अधिकारी बनाते ही हो वरन् अपने इस तरह के विचारों से तुम अपने मित्रों सम्बन्धियों का परम हित करते रहते हो।

तुम जिसके लिए जैसा विचार करते हो वह विचार अपने गुण रूप से उस व्यक्ति को अपनी रक्षक शक्ति से घेरे रहता है। प्रेम दया के विचारों से तुम अपने प्रेम पात्र के आस पास मानों एक रक्षक दूत बना देते हो, जो उसकी (संकटों से) यंत्रवत् रक्षा करता रहता है। इसी प्रकार स्वार्थ एवं कनिष्टकर विचारों से तुम किसी के साथ एक दानव आकृति गढ़ देते हो जो उसे खतरे में डालने का अवसर देखा करता है। इस तरह अनेकों बार तुम पाप पुण्य की वृद्धि करते रहते हो।

तुम अपने विचारों से मृत–जीवों को परलोक में भी सहायता दे सकते हो जो कि अधम–वासना–बद्ध नीचे लोकों में नर्क दुख का भोग कर रहे हों पर जो तुम्हारे सम्बन्धी हों–इसी प्रकार उच्च पवित्र आत्माओं से विचार–चिन्तन द्वारा श्रद्धा भक्तिमय सम्बन्ध स्थापित कर उनसे उच्च लोकों से इस भूलोक में आशीर्वाद, सहायता प्राप्त कर सकते हो।

यहां तक गुप्त रहस्य समझ लो कि तुम कहीं भी, किसी के प्रति भी जहां तुम्हारे विचार श्रद्धा, भक्ति का रूप धारण कर लें तो उसी व्यक्तित्व में तुम्हें महानता के दर्शन होते जायेंगे। वरन् तुम उस व्यक्तित्व में जहां सर्वसाधारण लोगों को कुछ भी विशेषता नहीं दृष्टिगोचर होती है वहीं तुम्हें महानता और ईश्वरत्व महिमा का बोध होगा–क्योंकि सत्य सर्वत्रपूर्ण है–उसे तुम श्रद्धा–भक्ति के विचारों से कहीं भी आवाहन कर सकते हो–तभी कहा गया है।

हरि व्यापक सर्वत्र समाना।
प्रेम ते प्रगट होंइ मैं जाना।।

तुम्हारे श्रद्धा–प्रेममय विचारों में ही वह शक्ति है कि जिसके द्वारा परमानन्द का दिव्य द्वार खुल जायेगा।

एक मनुष्य का विचार दूसरे मनुष्य पर असर डालता है–

एक कुटुम्ब के विचार दूसरे कुटुम्ब पर अपना असर डालते हैं, इसी प्रकार एक जाति के विचार दूसरी जाति के सम्मुख बड़े होते हैं–और एक देश के विचारों का असर दूसरे देश के सामने दीवाल बनाता है।

विचारों के असर की समानता में तो प्रभाव पड़ता है और असमानता में भयंकर युद्ध होता है। प्रतिवाद खड़ा होता है– इन सब बातों की जड़ मनुष्य के विचार है। कोई मनुष्य या कुटुम्ब या जाति या देश जहां तक अपने ही स्वार्थ सुख की सिद्धि के लिए स्वार्थी विचार रखता है वहीं तक वह अपना वर्तमान और भविष्य अंधकारमय बनाकर दुखद नर्क की रचना करता रहता है। यदि इसके विपरीत कोई मनुष्य या कोई कुटुम्ब या जाति या देश अपने व्यक्तिगत अंह की स्वार्थ सुख–लिप्सा

त्यागकर, परोपकार दया एवं निष्काम प्रेम की दृष्टि खोल कर यात्रा करता है तो वह अपना वर्तमान और भविष्य प्रकाश मय बनाते हुए परमानन्द का सदैव के लिए द्वार खोलता है, और अनन्त सुख का झोका बनता है।

प्यारे पथिक! यही सद्विचार पथ है जिसके द्वारा तुम मानवता के ऊँचे ऊँचे सोपानों में चढ़ते हुए देवत्व की सीमा में पहुॅच जाओगे। आज तक जहां तुम अपने सद्विचार पथ से कितने नीचे स्तरों में भटकते रहे, जहां भयानक दुखों, यातनाओं से भरी दुनियां में ही ईर्षा, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह मद मत्सर आदि के नियंत्रण में आबद्ध रह कर कितनी शक्ति और कितना समय खोते रहें, अब वहां से उस पथ के विपरीत लौट कर सद्विचार पथ द्वारा सुन्दर शान्ति एवं सुख मय संसार में तुम प्रवेश करोगे। वहां मैत्री, सहानुभूति, समता, सुशीलता, संतोष, सरलता, सहनशीलता, साहस, क्षमा आदि सदगुण रूपी दिव्यता से सुरक्षित सुसज्जित होकर अपने परम लक्ष्य परमानन्द मय परमात्मासे तन्मय हो सकोगे।

तुम इस सद्विचार पथ में ही धर्ममय पवित्र आचरण बना सकोगे क्योंकि जब तक कुछ करना है तब तक धर्म का आश्रय पकड़ना होगा, जिसके धारण करने में भयरहित शान्ति, बल की प्राप्ति हो वही धर्म है।

धैर्य क्षमा भाव, इन्द्रियदमन, लालच चोरी का त्याग, अन्तर बाहर की शुद्ध–मनोनिग्रह–विद्या और बुद्धिमत्ता, सत्य भाषण, क्रोधत्याग धर्म के लक्षण है। किसी सन्त की धर्म के विषय में ऐसी सम्मति है कि ''परहित सरिस धर्म नहि भाई पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।'' इसी प्रकार किसी महात्मा ने 17 पुराणों में केवल यही अपने हित की बात चुनी है ''भ्रष्टादश पुराणानाम् व्यासस्य वचन द्वयम्। परोपकार पुरायाय पापाय पर–पीड़नम्।।'' यानी परोपकार ही पुण्य है, धर्म है और परपीड़ा ही पाप है।

सन्तों, महात्माओं के यह सभी शब्द बहुत ही सुन्दर और सारगर्मित है। तुम्हें विचार पथ में चलते ही इनको ग्रहण करना होगा। अतः आगे इसमें जिस बात की आवश्यकता है वह है विवेकदृष्टि, उसे ही प्राप्त करने के लिए आगे बढ़ो।

–: नमो सद्गुरूदेव :–

सद्विवेक दृष्टि

पथिक रूप में अविनाशी आत्मन! तुमने सद्‌गुरू, सन्त सत्संग–कृपा के बल से अपने परमलक्ष्य परमानन्द का जो सद्विचार पथ है उसे तो पा लिया। अब इस पथ में यात्रा करने के लिए सद्विवेक रूपी दृष्टि खोलो, इसके द्वारा ही तुम पग पग पर सावधान होकर कुशलता से चल सकोगे।

ऐ वीर पथिक! विवेक दृष्टि से स्पष्ट दिख रहा है कि अपने परम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए तुम्हें निरन्तर उत्साह से तत्पर रहना चाहिए। साहस को साथ लेकर सतत् प्रयत्न द्वारा किन्तु अटूट धैर्य पूर्वक जनसमूह का त्याग करके एकान्त में रहते हुए निश्चय–ज्ञान के आधार पर अपने परम लक्ष्य की ओर अनायास सिद्धि लाभ करोगे। तुम्हें अपनी किसी भी प्रकार की सफलता के लिए मन को संयमी बनाना पड़ेगा।

अब तुम विवेक दृष्टि से अपने चित्त की उन दशाओं को भी देखते चलो, जो कभी तमोगुण प्रधान होने पर मूढ़ दशा धारण करता है, और कभी रजोगुण, तमोगुण मिश्रित होने पर क्षिप्त हो जाता है, तथा कभी रजोगुण प्रधान होने पर विक्षिप्त होकर सतोगुण प्रधान होने पर एकाग्र होता है, और इसके परे योग सिद्धि में इसकी निरूद्ध दशा प्राप्त होती है। उपरोक्त चित्तवृत्ति की अवस्थाओं के साथ अपनी मानसिक शक्तियों को भी समझ लो।

साधना के क्षेत्र में चलने पर श्रद्धा, उत्साह, स्मृति, समाधि, प्रज्ञा इन पांच शक्तियों को लेकर मन व्योहार करता है। जब श्रद्धा अधिक होती है, प्रज्ञा मन्द होती है तो सार–हीन बातों पर विश्वास होना निश्चित है और प्रज्ञाधिका श्रद्धा मन्द हुई तो स्वार्थ साधक होना निश्चित है। यदि उत्साह अधिक हो पर समाधि मन्द हो, तो भ्रान्त चित्ता होना निश्चित है, और समाधि अधिक हो, उत्साह मन्द हो तो आलसी होना निश्चित है।

अतः श्रद्धा के साथ प्रज्ञा (बुद्धि ज्ञान) विकास होना अधिक सुन्दर है, इसी प्रकार प्रज्ञा के साथ ही साथ श्रद्धा होना सुन्दर होगा। श्रद्धा हृदय की वस्तु है और

प्रज्ञा मस्तिष्क की। यदि हृदय और मस्तिष्क दोनों एक प्रकार होंगे तो समुचित सफलता निश्चित है। इसी प्रकार उत्साह और समाधि भी समरूप में संयोजित होना सुन्दर होता है।

इधर भी दृष्टि डालो! तुम्हें स्मरण रहे कि जिस शक्ति बल द्वारा तुम काम, क्रोध ा, ईर्षा, कलह आदि अवगुण चरितार्थ करते हो, उसी शक्ति से साहस दृढ़ता क्षमा धैर्य आदि सद्गुणों का सुन्दर विकास होता है। ध्यान रहे कि धृति, क्षमा, प्रेम आदि का पावन तेज बल, क्रोध, काम, ईर्षा के भयानक रूप में परिणत हो जाता है।

जितनी ही मात्रा में तुम अपने छुद्र अंह की स्वार्थपरता में संयम करोगें, उतनी ही तुममे महानता दर्शित होगी। और जितनी ही मात्रा में अपने क्षुद्र अहं की पाशविक वृत्तियों के आधीन होगे। उतनी ही मात्रा में तुम दुखी, दरिद्र बन कर अपनी मूर्खता अज्ञानता के कारण अधः पतित होते जावोगे। देखो, तुम्हारा मन ही, तुम्हें सुपथगामी और कुपथगामी बना देता है। यदि विवेक दृष्टि से तुम इसे निरन्तर देखते रह कर इस पर नियंत्रण रक्खोगे—तब तो तुम्हारा परमोत्थान निश्चित है और यदि इसे अपनी स्वेच्छाचारिता में चलने दिया तब तो पतन ही अवश्यम्भावी है। यह मन ही तुम्हारे बन्ध ान मुक्ति का कारण है।

देखो, ये इन्द्रियां स्वभावतः विषयानुगामिनी हैं—और मन इनके ही कुसंग में तद्रूप होकर सद्पथ से भ्रष्ट होता है, और बुद्धि विषयीमन की अनुगामिनी बनकर विवेक दृष्टि हीन हो जाती है। यही तुम्हारा घोर पतन है।

अब मन को विषय, कुसंग से मुक्त करके बुद्धि में सद् विवेक दृष्टि जाग्रत कर अंह को आत्मा में लय करो और आत्मा को परमात्मा में तन्मय बना दो यही है परमानन्द की प्राप्ति।

अनुचित स्वार्थ बन्धन से मुक्त होने के लिए अपने संकल्पों पर अधिकार प्राप्त करों। दृढ़ संकल्प के द्वारा ही तुम्हारी हर ओर विजय हो सकेगी। तमाम कठिनाइयां दूर होगी।

अपनी उन्नति के लिए केवल सद्वासना से ही काम न चलेगा वरन् प्रत्येक सद्भावना को व्योहाररूप में चरितार्थ करना होगा।

कहीं पर हताश न होना चाहिए अटूट धैर्य रखते हुए निरन्त प्रयत्न में संलग्न रहो। यदि तुम निरूत्साहित होकर उदासीन हो जावोगे तो सद्गुरू के कृपा बल के आगे तुम मानो पर्दा डाल दोगे क्योंकि हताश निराश, चिन्तित होने के सद्गुरू सहायता नहीं कर पाते।

कारण यह है कि यदि कोई अपनी चिन्ता में अधिक व्यस्त रहता है तो वह अपना ही ध्यान चिन्तन कर रहा है न कि अपने आराध्यदेव का। इसी से आराध्यदेव के प्रति अपनी चिन्ता में व्यस्त होने पर एक पर्दा पड़ जाता है।

तुम्हें व्यर्थ चिन्ताओं, वेदनामों से बचते रहने के लिए अपने आराध्य देव को निरन्तर स्मरण करते रहना चाहिए।

अपने भीतर की बुराईयों और दुर्गुणों को हटाने का सदा प्रयत्न करते रहना होगा। तुम अधिकतर मौन रहो या विवेक दृष्टि से देखकर सत्य प्रिय और हितकर शब्द बोली।

यह भी समझ लो कि किसी लम्बे वाद–विवाद में यदि तुम पड़ोगे तो व्यर्थ ही अपनी शक्ति का हास और समय का दुरूपयोग ही होगा। साथ ही बहुत जोर की हंसी भी तुम्हारे अन्तर शरीर पर हानिकर प्रभाव डालती है अतः इससे भी सावधान रहो।

तुम्हें पूर्णता प्राप्त करना है और उसका साधन यही है कि मन पर संयम, पवित्रता, रक्खो। निर्दोष जीवन बनावो।

विवेक दृष्टि से सत्य का ही समर्थन करो। यातनाओं को, नाना प्रकार के कष्टों को, गम्भीरता से सहन करते हुए आन्तरिक सत्य विरोधी दुर्गुण पर विजय प्राप्त करो।

तुम तभी अपने को निर्बल पावोगे और तभी अपने को पतित होते हुए देखोगे–जबकि मनोवृत्तियों की दासता में बद्ध होकर सद्विवेक दृष्टि ही बन्द कर

लोगे और निम्न विषयानुगामिनी मनोवृत्तियों का जब तुम पर शासन होगा। अतः सावध ाान रह कर मनोवृत्तियों के लिए संयम की लगाम ढीली न करो।

अपने समय पर अपनी शक्ति पर बहुत कड़ी दृष्टि से हिसाब रक्खो और एकान्त में बहुत सावधान रहो। तुम जितना ही सद्गुणों, सद्भावनाओं का व्योहारों में चरितार्थ करोगे उतना ही तुमसे दृढ़ पुरूषत्व का निर्माण होगा। तुम्हारा जीवन गौरवशाली बनेगा।

यदि तुम विवेक दृष्टि से काम न लो तो अपनी ही अज्ञानता, मूर्खता के कारण दासता की बेड़ियों से तब तक बंधे रहोगे जब तक ज्ञान विवेक दृष्टि पुनः न खुलेगी।

दुराचरण में प्रयुक्त शक्ति का सदुपयोग करना ही सदाचारी बनना है। एक क्षेत्र पर केन्द्रित शक्ति ही सामर्थ्य कही जाती है–उसी शक्ति को सदाचार में चरितार्थ करना ही बुद्धिमत्ता है। इसी नियम से दुष्ट व्यक्ति सज्जन बन जाता है।

अपने परम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए तुम्हारें पास आज समय, शक्ति बहुत ही सीमित है–अतः इसे अपव्यय से बचा शक्ति को समय को, सत्य जीवन से पवित्र बनाकर विजयी बनो।

तुम जब अपने परम लक्ष्य को भूल जाते हो, तभी तुम्हारा जीवन अनिश्चित दीन, दुर्बल, हो जाता है। अतः लक्ष्य को कभी न भूलो। तुम अपने आपका नियंत्रण करने में जितना ही असावधान रहोगे उतना ही लक्ष्य से दूर हटते जाओगे और जितना ही पूर्ण नियंत्रण में सफल होगे उतना ही लक्ष्य के निकटस्थ होते जाओगे।

अपनी इस पवित्र यात्रा में किसी भी प्रकार की कठिनाईयों के आने पर धैर्य संतोष, सहनशीलता को कभी न छोड़ो वरन् इन्हीं सद्गुण बल से उनका सामना करो। इसी से तुममें चरित्र बल बढ़ेगा। गम्भीरता आदि सद्गुणों का अधिकाधिक विकास होगा। हर प्रकार से इन्द्रिय मनो संयम में ही तुम्हारी बुद्धिमत्ता तेजोमय रूप ध ाारण करती है और इसी प्रकार की बुद्धिमत्ता में बल और शान्ति का निवास होता है।

जितना तुम किसी भी क्षेत्र में बहिर्मुख प्रवाहित शक्ति का संयम निरोध कर सकोगे, उतना ही तुम अपने परम लक्ष्य की ओर सफल होने के लिए पर्याप्त शक्ति बल को संग्रहित पाओगे।

सद्गुणी ही संयमी हो सकता है, और संयमी सद्गुणों का विकास कर सकता है। उसे ही शान्ति प्राप्त होती है। जो अपने मस्तिष्क को अधिकार में रखना सरल कर चुका है।

जहां शान्त मस्तिष्क है, वहीं बल है, विश्राम है, वहीं बुद्धि भी है। उसके लिए सब कुछ सम्भव है।

अपना और दूसरे का भी पथ प्रदर्शन तुम सद्गुणों के विकास होने पर ही कर सकते हो।

तुम अपने अनुचर न बनो, वरन् स्वामी बनो, निरन्तर अपनी अहंगत रूचियों और कामनाओं का शमन करते रहो।

तुम विवेकवान शान्त अपने को तभी समझना जबकि तुम्हारा क्षुद्रअंह किसी भी वस्तु का अभिमानी न रह जाये। तुम्हारा अंह ही तुम्हारा शत्रु है। अज्ञानता ही अंधकार है और अपने स्वार्थ से उत्पन्न यातना ही दण्ड है।

तुम विवेक दृष्टि द्वारा अपनी अस्तव्यस्त दशको सम्हालों फिर तुम अपनी निम्न इच्छाओं, अनिच्छाओं, पश्चातापों, आशाओं निराशाओं से घिरे हुए नहीं रहोगे। तुम अपने क्षुद्र अंह की सेवा का परित्याग कर सत्य की सेवा करों, तभी तुम्हारा विजयी जीवन होगा।

अब तुम अपनी विवेक दृष्टि के बल पर चिन्ता, भय, शोक, विलाप, निराशा, पश्चाताप, अधमता, ग्लानि, कायरता, आदि इन सबों को कहीं अपने अन्दर न घुसने दो क्योंकि यह सब वहीं रहते है जहां अधंकार है, अज्ञान है, मूर्खता है।

विवेक दृष्टि वालां के पास संरक्षण, आश्वासन, संतोष, तृप्ति, शान्ति, गम्भीरता, धीरता, जागृति, प्रकाश, यह सब स्थित सम्पत्ति रहती है।

विवेक दृष्टि से तुम अपने मन को शुद्ध रख सकोगे और शुद्ध मन के होते ही तुम्हारे भीतर बाहर शुद्धता विराजेगी। शरीर भी स्वस्थ एवं शुद्ध उसी का होगा जिसका शुद्ध मन होगा।

जिस तरह पुष्प के सौन्दर्य का मूल्य उसकी सुगन्ध से बढ़ता है उसी तरह मनुष्य में सौन्दर्य सुगन्ध उसका सचरित्र है। तुम्हारे द्वारा उसी प्रकार के भाव पूर्ण कर्म होगें जैसा तुम्हारा चरित्र होगा।

विवेक दृष्टि से तुम हर समय सत् असत् का निरीक्षण करते रहो, किसी भी परिस्थिति में ऊपरी कठोरता और भयानकता में भयभीत मत बनो। सत्य पथ में गम्भीरता के बल से परिस्थितियों का सामना करो।

मुसीबतों के मेघ कैसे ही काले क्यों न हो, परन्तु उनके पीछे पूर्ण प्रकाशमय एक रस समता का सूर्य सदा ही विद्यमान है। तुम दुखान्धकार को देखकर क्यों घबराते हो, उसके पीछे ही उसे पार करने पर सुख प्रकाश में तुम अपने को पाओगे। यह भी समझ लो कि तुम्हारे जीवन में साधना का किसी प्रकार की सिद्धि चमत्कार ही न होकर सद्गुण विकास होना चाहिए।

प्रायः तुम संसार में कई तरह के धर्म देख रहे हो पर जिस धर्म की ओट में मानवी क्षुद्र अहंगत, वासनाओं, कामनाओं की सिद्धि हो रही है, वहीं से निसंदेह कलह, विवाद, युद्ध प्रारम्भ होते है। पर बुद्धिमान अपनी विवेक दृष्टि से उसी धर्म की शरण में जाता है। जिस धर्म का अधार अविद्योपाधि रहित निष्पक्ष स्वंतत्र बुद्धि है जो कि सद्कार्य रूप में परिणत होती है।

सोच कर देखो तुम्हारा चित्त और हृदय परिस्थितियों का परिणाम स्वरूप ही है। विचार और भाव स्वतंत्र, स्वछन्द न होकर परिस्थितियों के ही अनुवर्ती है। ऐसी दशा में तुम्हें अपनी विवेक दृष्टि द्वारा अपने परम लक्ष्य की ओर बढ़ने के लिए परमानन्द मय परमतत्व बोध के लिए इन परिस्थितियों से संघर्ष करना पड़ेगा। इनके बन्धनों से अपने चित्त को मुक्त कर परिस्थितियों को ही स्वबस, स्वानुकूल बनाना होगा। यह सब तुम्हारे विवेक दृष्टि–कोण के शुद्ध परिवर्तन पर ही सुलभ हो जायेगा।

तुम्हारा मन तमाम अनुभूत विषयों के बोझ से देब कर स्मृतियों का भण्डार बन गया है। यदि तुम अब अपने वर्तमान को विवेक दृष्टि द्वारा गम्भीर और विचारमय बनालो तो तुम्हारा भविष्य अनुचित बोझ से मुक्त होकर ज्ञान, प्रकाश, एवं शान्ति शुद्ध बल का भण्डार बन जायेगा।

तुम अपनी आवश्यकताओं से इतना दबे हो कि परमार्थ लाभ के पथ में कदम नहीं बढ़ा पाते, अपने तमाम कष्टों को दूर करने के लिए इस समय आवश्यक कर्तव्य यहीं है कि तुम अपनी आवश्यकताओं को ठीक ठीक समझ लो। तुम्हें संग्रह की इतनी अधिक चिन्ता ही न रहेगी। पर यह तुम अपने अन्दर शुद्ध बुद्धि विकास होने पर ही समझ सकोगे कि मेरी ठीक ठीक आवश्यकताओं क्या है।

जब तक तुम्हारी विवेक दृष्टि अनन्त के पूर्ण सौन्दर्य को नहीं देख पाती तब तक तुम चमत्कारों, कौतूहल जनक घटनाओं के लिए उत्सुक होकर दौड़ते फिरते हो। लेकिन जब तुम सत्य के परम सौन्दर्य को देखोगें तब तुम्हें इतना असीम संतोष हो जायेगा कि किसी भी दिव्य चमत्कार की दिव्य घटना का तुम पर प्रभाव ही न पड़ेगा।

विवेक दृष्टि से ऊपर बढ़ जाने पर तो किसी भी प्रकार की प्राप्ति की इच्छा ही बन्धन है। अज्ञानता के कारण ही तो मनुष्य महत्व चाहता है और यही महत्व की लालसा लोगों को एक आकर्षक जाल में फंसाये रहती है।

विवेक दृष्टि द्वारा तुम सत्य असत्य का विवेचन करो। सत्य को न देख सकने के कारण ही तुम मिथ्या अंह की भावनाओं से भयभीत होते रहते हो। इस अहं की रक्षा के ही लिए आवश्यकताओं का संग्रह होता है। इसी से स्वार्थ बुद्धि उत्पन्न होती है। यहीं पर तमाम दुख उत्पन्न होते हैं।

वास्तव में तुम्हारे मन की दशा दृश्य के अनुसार ही बनती रहती है। हर एक दृश्य का अपना असर होता है। दृश्य के प्रभाव दृष्टा के मन पर पड़ते रहते है। जब तक तुम दृश्य के वास्तविक रूप को न समझो तब तक दृश्य के बन्धन से मुक्ति नहीं हो सकती और तब तक क्लेश नहीं मिट सकते। दृश्य के प्रभाव से बचने के लिए या तो विवेक–दृष्टि द्वारा दृश्य के असार रूप का ज्ञाता बन जाओ या फिर ऐसे परम

आदर्श के दर्शन सुख से अपने को भर दो कि किसी दृश्य के देखने का अवकाश ही न रह जाये।

जिन परिस्थितियों के दृश्य बन्धनों से तुम जकड़े हुए हो उन पर दांत पीसने से या झीकने से काम न चलेगा, विवेक दृष्टि द्वारा देखो कि क्यों बंधे हो, कैसे बंधो हों? यह समझते ही उनसे मुक्ति का मार्ग भी स्पष्टदीख पड़ेगा। तुम्हारा कोई भी दुख तुम्हारी ही अज्ञानता का परिणाम है। तुम्हें उसी से उच्च ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है यदि विवेक दृष्टि से काम लेने लगो।

जहां तक तुम्हारा अधिकार है–तुम अपने जीवन को अपने स्वकल्पित संसार को बनाते या बिगाड़ते रहते हो। उसी प्रकार का जैसे कि तुम हो। जहां पर देहात्म–बुद्धि वाले मनुष्य मृत्यु के पथ में चलते हुए सदा भयभीत रहते है वहीं पर तुम अपनी विवेक दृष्टि के द्वारा अपने सत्य शास्वत् स्वरूप का अनुभव कर अनन्त जीवन को झोका होकर परमानन्द को प्राप्त होगे।

यदि तुम अपने निकटवर्ती संसार को पवित्र सुखमय बनाना चाहते हो, उसके तमाम दोषों को दूर करना चाहते हो, तो एक मात्र सच्चा उपाय यही है कि तुम अपने आप को विवेक दृष्टि द्वारा देखते हुए पवित्र सुखमय बनाओ, अपने तमाम दोषों को दूर करो।

यदि तुम दृढ़ संकल्प द्वारा अपने आन्तरिक जीवन को सुधार लो तो अपने बाहा जीवन में वह उन्नत दशा बड़ी सरलता से आ जायेगी, जिसके लिए तुम प्रायः व्याकुल हो उठते हो, और पुनः तुम्हारे आस पास भी सद्चारिज्य सौरभ फैल वातावरण को सुगन्ध मय बना देगा।

तुम इस बात पर भी सावधान हो जाओ कि तुम्हारे पास जो कुछ भी किसी प्रकार का धन है, कोई भी सार हीन तुच्छ वस्तु ही क्यों न हो पर उसका भी विवेक दृष्टि से निरन्तर सदुपयोग करने की लगन में दृढ़ रहो–यदि ऐसा न करोगे तो वह वस्तु भी तुमसे छीन ली जायेगी।

तुम जिन अवस्थाओं को और दुखद दशाओं को अनिष्टकारी समझते हो—उन्हीं जगह से तुम्हें परमानन्द का पथ खुला मिलेगा। विवेक दृष्टि से देखो तुम अपनी दरिद्रता से ही धैर्य, सहनशीलता, साहस आदि सद्गुण बढ़ाते हुए सुन्दर शान्ति सुखमय भविष्य को सुगठित करोगे और अपने समयाभाव की शिकायत न कर तुम कार्य शीघ्रता की सावधानी रखकर सफलता के लिए अग्रसर होओगे।

बाहय परिस्थितियों का वहीं तक प्रभाव पड़ता है जहां तक तुम असावधानी से पड़ने देते हो। यदि त्याग, वीरता, धैर्य, सहनशीलता से उनका सामना करो तो अपने को अधिकाधिक सुरक्षित पाओगे। वास्तव में दुरावस्था रूपी कराटकों के बीच में ही सबसे उत्तम मनुष्य रूपी पुष्प खिला करते है। विवेक दृष्टि से देखो तो कठिनाईयों और विरोधों के बीच में ही सुन्दर सद्गुणों का समुचित विकास होता है।

तुम सावधान रह कर किसी की क्रूरता का उत्तर अपने सदव्योहारों से दो। अपने ऊपर पूर्ण अधिकार रखने का प्रयत्न कभी शिथिल न करो। तमाम तरह की हानियों के साथ सहनशीलता, सरलता, समता को दृढ़ करो लेकिन सत्य, धर्म, रक्षा के लिए जहां से द्वार मिले वहीं से निकलो।

किसी ऐसे कर्तव्य पर या ऐसी अनुचित स्वार्थ सिद्धि के लिए क्षमा न करो जिसमें सत्य धर्म कलकिंत होता हो। अपने आप पर सदा शासन रखो। विवेक दृष्टि से हीन होकर सद्गुणों के अभाव में तुम धनी वैभव सम्पन्न बन जाओ तब भी तुम भिखारी ही रहोगे और तुम्हारा अधः पतन ही होगा।

यदि तुम अपनी थोड़ी सी सम्पत्ति से ही भलाई नहीं करते और ज्यादा के लिए तरसते हो, तो तुम अधिकारी नहीं हो। ध्यान रहो! चाहे कितने ही गरीब तुम क्यों न हो पर स्वार्थ त्याग का सदा स्थान है।

यह भी देख लो कि जो मनुष्य अपने अंह के ऐहिक सुख स्वार्थ के लिए लोलुप रहता है उसमें भोग, विलासिता, घमण्ड, घृणा, क्रोध, लालच, हठ आदि दुर्गणों के कारण भारी दरिद्रता, निर्बलता बढ़ती है। इसके विपरीत विवेक दृष्टि जिनकी खुली है उनमें विनम्रता पवित्रता, धैर्य गम्भीरता, क्षमा दयालुता स्वार्थ त्याग, परहित भाव की

चरितार्थ दृढ़ता आदि यही सम्पत्ति शक्ति होती है। वेही तो सच्चा धनी है जिनके पास उपरोक्त कथित सम्पत्ति शक्ति है।

यह भी समझ लो जहां अपना ही सुख प्रधान है उस स्वार्थी व्यक्ति को, आंशका, दुख, चिन्ता–भय, क्षोभ, निराशा, निरूत्साह आदि से भरी परिस्थितियां तब तक दबाती रहेंगी, जब तक विवेक दृष्टि द्वारा सत्य पथानुयायी होकर स्वार्थ त्यागी न होगा। क्योंकि उपरोक्त पीड़ायें स्वार्थ के फल स्वरूप हैं।

यदि तुम अपनी समस्त आन्तरिक शक्तियों को पूर्ण रूप से वश में कर सत्य पथ के पथिक बनते हो तो तुम स्वयं एक आदर्श पतितोद्धारक हो, और यदि तुम उन्हीं के वश में होकर दास बन जाते हो तो तुम्ही एक पतित हो। पापी और उद्धारक में इतना ही अन्तर है।

तुम अपने अन्तर्निहित सत्य पर, अपने आराध्यदेव पर पूर्ण विश्वास रखो, अपने अटल विश्वास से, अमिट पवित्रता से स्वास्थ्य, सफलता, शक्ति के योग्याधिकारी बने रहोगे।

यह भी स्मरण रहे कि मनोत्तेजना जो किसी क्षणिक आवेश से आ जाती है, वह शक्ति नहीं है, उस पर विश्वास न करो। वह एक तरह की कुछ देर के लिए आंधी है जो शांत हो जायेगी। वरन् उत्तेजना तो केन्द्रित शक्ति का अपव्यय है किसी भी प्रकार की ऐहिक कामना की उदण्ड वृत्ति को निश्चित इच्छाशक्ति से रोकते रहना, शक्ति पर विजयी होना है। तुम स्वर्गीय सुखों के वास्ते कितना ही किसी को दोषी ठहराओं, पर विवेक दृष्टि से तुम स्पष्ट देख सकते हो कि स्वर्ग सुख और नर्क दुख का कारण तुम्हारे ही भीतर है, वरन् तुम्ही उपाधियोग से नर्क और स्वर्ग का रूप ध
ारण करते रहते हो।

वासनाओं का दमन कर इच्छाओं को छोड़ना ही तो स्वर्ग को प्राप्त करना है, जहां सब प्रकार के सुख पथिक की राह देखा करते हैं। ध्यान रहें, तुम्हारी नाना प्रकार की कामनाओं इच्छाओं में ही सारी पीड़ायें गर्भित है। जितना ही तुम स्वार्थ और क्षुद्र अहं के प्रमोद में लिप्त होते हो उतना ही नर्क में डूबते हो, और इस अहमन्यता

के परे यदि अंह–विस्मरण, अंह त्याग के बाद (जो शुद्ध चिन्मात्र सर्वाधार तत्व है) उसमें तन्मय होते हो तो अपने परम लक्ष्य परमानन्द में तल्लीन हो जाओगे।

सावधान रहो! क्योंकि स्वार्थ विवेक दृष्टि को अंधा बना देता है। सत्य–ज्ञान रूपी प्रकाश के आगे यही बादल बन जाता है जिसके परिणाम में सदा दुख वर्षा ही होती है इसलिए स्वार्थ का दमन करो।

तुम यह भी शिकायत न करो कि तुम्हारे आस–पास सब स्वार्थी, अन्यायी, विधर्मी पुरूष है, बल्कि विवेक दृष्टि से देखो कि बड़े सौभाग्य की बात है कि तुम उन सबके समान नहीं हो। हर्ष मनाओ और सब से उदासीन रहो। देखो तुम जितना ही विनयी होकर अपने ऊपर विजय प्राप्त करोगे, देवी शक्तियां उतना ही तुममे विकसित होंगी।

अवनति और उन्नति के कारण तुम्हारे ही भीतर हैं, विवेक दृष्टि से देखते रहा करो। पापी पवित्रता को कैसे देख सकेगा क्योंकि उसमें विवेक दृष्टि नहीं खुली, पर वह पुरायात्मा, जिसमें यह दृष्टि खुलती है, भली प्रकार पाप को देखता रहता है।

विवेक दृष्टि द्वारा इस क्षुद्र अहं को सत्यात्मा में तन्मय बनाओ तब तुम्हें अपने भीतर ही सत्स्वरूप में गुरूदेव भी मिल जायेगे। सब कुछ तुम्हारे भीतर ही है। तुम पूर्ण से ही पूर्ण होगे। संसार के सुख या दुःख भी तुम्हारे ही हृदय के अनुभव मात्र हैं, जो तुम बाहय पदार्थों पर निर्भर करते हो। विवेक दृष्टि से देखने पर यह सुख दुख कुछ और ही रूप में दिखते हैं, यह दृष्टि न खुलने पर कोई आयु से वृद्ध होने पर भी मनुष्य बालक के समान हैं, क्योंकि हर एक वस्तु के स्वभाव को न जानने के कारण वह अपने ही अस्वाभाविक अनुचित रागशक्ति के परिणाम से दुखी होकर रोया करता है।

वास्तव में तुम्हारे ऊपर जो कुछ भी शोक, दुख, विपत्तियां आती है, वह ठीक नियम से आती है, जब कि आप उन्हीं के योग्य होते हैं और तुम सावधान होकर देखो तो प्रत्येक दुख के पीछे तुम्हारे सुख का द्वार खुला हुआ है।

यह भी ध्यान देकर समझ लो कि तुम्हे जो कुछ भी अपने अधिकार में दिखाई देता है उसी का अच्छा से अच्छा सदुपयोग करों, यदि तुम थोड़े से थोड़े समय को व्यर्थ खोते रहते हो तो अधिक समय की कांक्षा करना व्यर्थ ही है। क्योंकि फिर तो तुम और भी आलसी प्रपश्ची बन जाओगे।

यदि तुम अपनी परिस्थिति ठीक ठीक शान्त नहीं कर पाते तो तुम अपने को घ टनाचकों की दासता से मुक्त नहीं कर सकोगे, क्योंकि तुममे आत्मशासन और विश्वास का अभाव है। ध्यान दो कि विश्वास और उद्देश्य तुम्हारे जीवन में गति पैदा करते है, इन्हीं के द्वारा तुम विजयी जीवन प्राप्त करोगे।

अपनी साधारण रूचियों, कामनाओं का लालन पालन करने से तुम निर्बल और अनुपयोगी जीवन बनाते जाओगे। तुम जीवन को सदुपयोगी सिद्ध होने के लिए अपनी छोटी छोटी इच्छाओं, रूचि, अरूचि की भावनाओं पर विजय प्राप्त करो। मोह ममता के प्रलोभनों, और घृणा, ईर्षा, क्रोध, लोभ की ओछी वृत्तियों, तथा इसी प्रकार क्षुद्र अंह की दरिद्रता पूर्ण चेष्टाओं पर शासन पर शक्ति और समय को परमार्थ लाभ के लिये ही सदुपयोगित होने दो।

अपने ऊपर इस प्रकार का स्वाधिपत्य तुम्हारी शक्ति को आगामी विजय के लिए बेहद बढ़ा होता है। कोई भी कठिनाई ऐसी नहीं कि जिसे तुम अपनी केन्द्रित शक्ति से एकाग्रचित हो कर शान्ति पूर्वक जीत न सको।

तुम विवेक दृष्टि से देखो तो स्पष्ट हो जायेगा कि वास्तव में दुख, दरिद्रता, शोक, रोग, विश्व की वस्तुओं से उत्पन्न नहीं होते वरन् यह सब परस्पर की अज्ञानता से उत्पन्न होते है। तुम अनावश्यक बातों में पड़कर व्यर्थ चिन्ताओं के शिकार कभी न बनो।

तुम केवल अपने परम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मन वाणी, कर्म से निरन्तर प्रयत्न करो। तुम्हारा अन्तःकरण जितना ही इसकी प्राप्ति के लिए उत्सुक होगा, जितनी ही तुम्हारी भावनायें सुदृढ़ सुन्दर होगी, उतना ही अपने परम लक्ष्य की ओर शीघ्रता से बढ़ोगे।

तुम अपने परम लक्ष्य के अतिरिक्त और किसी भी वस्तु को सामने न आने दो, जो कि लक्ष्य के विरूद्ध हो। अपने सच्चरित बल विकास के लिए पवित्र आदर्श का सहारा रखो। तुम्हारी मानसिक अभिलाषायें हार्दिक भाव पवित्र आदर्श के अनुकूल ही होनी चाहिए।

तुम अपने पवित्र भावों एवं अभिलाषाओं से अपने अन्तर्बल को बढ़ता हुआ पाओगे। तुम्हारी योग्यता की वृद्धि होगी। यह भी याद रखो कि जिन पदार्थों से तुम भय खाते हो उनसे किसी भी तरह के सम्बन्ध न रखो। उनको अपनी दृष्टि की सीमा से निकाल बाहर करो। वे सब तुम्हारी उन्नति के घोर शत्रु हैं तुम्हें स्मरण रहे कि जिस प्रकार के गुण तुम में प्रधान होगें उसी प्रकार के स्वजातीय गुण वाले पदार्थों को ही तुम अपनी ओर आकर्षित कर सकोगे।

सावधान होकर देखो तुम्हारी जीवन अपने परम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए ही होनी चाहिए। अपनी शक्ति पर विश्वास लाओ, सफलता प्राप्त करो, पर शंसय न रखो क्योंकि शंसय से तुम्हारी उत्पादक शक्ति नष्ट होती है। यह शंसय ही तुम्हारी पवित्र अभिलाषाओं को शक्ति–हीन एवं पडगु बना देता है।

जितना ही तुम अपनी योग्यता पर अविश्वास करोगे उतना ही भय का भूत तुम्हें सफलता के पथ में बढ़ने से रोकता रहेगा। शंक पिशाचिनी तुम्हारा हाथ पकड़ कर बैठ जायेगी। इसलिए निश्छल विश्वास के सहारे धैर्य रूपी दरार को लेकर परम लक्ष्य की ओर दृष्टि गड़ाये हुए बढ़ो। तुम्हें अपने अन्तर्निहित दृढ़ विश्वास से बढ़कर संसार में और कोई सहायक न मिलेगा जो हीनता की अंधेरी खाई से निकाल सके। तुम अपने दृढ़ विश्वास के द्वारा ही फिर अन्य सहारों को पकड़ सकोगे।

दुनिया तुम्हें खुद ही रास्ता देगी, जब तुम दृढ़ विश्वास के बल पर दृढ़ संकल्प द्वारा दृढ़ता से कदम बढ़ाना प्रारम्भ करोगे। तुम्हारी अभिलाषा तभी फलदायनी बनेगी जब तुम उसे दृढ़ विश्वास के पथ में प्रकाशित करोगे। बिखरी हुई शक्ति संग्रहित करने का यदि कोई सुन्दर पात्र है तो वह दृढ़ संकल्प की स्थिरता में ही सफलता

निश्चित है। स्मरण रहे कि दृढ़ संकल्प, दृढ़ निश्चय, दृढ़ व्रत, दृढ़ विश्वास आदि में ही केन्द्रित शक्ति है। सफलता के लिए इन्हीं में से जीवन मिलता है।

तुम अपने परमलक्ष्य की ओर बढ़ते हुए अपने जीवन के दुखमय अनुभवों का मनन न करो, ऐसा करने से तेज हत होता है, प्रतिभा मन्द होती है। वरन् तुम अपने जीवन के उन सुनहले स्वप्नों का भले ही दर्शन करो जिनसे तुम्हें साहस, सान्त्वना मिली है, जहां से प्रकाश के लिए, बल के लिए, आश्वासन विश्वास का आधार मिला है।

तुम अपने ऊपर उदासीनता की काली चादर कभी न डालो। यह बहुत ही अशुभ और भयानक वस्तु है। यह भी ध्यान देकर समझ लो कि तुम अपने क्षुद्र अंह को जितने भी पदार्थों का स्वामी मान रहे हो, तुम जितनी सीमा में किसी को अपने बन्धन में बांध कर स्वाधिपत्य का भोग कर रहे हो, तुम स्वयं कदापि मुक्त नहीं हो, तुम यदि किसी को बांधे हो तो तुम उससे भी बंधे हो, स्वतंत्र होने के लिए तुम्हें अधि ाकार से बांधे हुए, सम्बन्धों को मुक्त करना पड़ेगा तभी तुम भी उनसे मुक्त हो सकोगे।

यदि तुम्हारे विचार, बुद्धि अन्तः करण निष्पक्ष स्वाधीन हो तो तुम स्वतंत्र हो सकते हो लेकिन तुम्हारी प्रकृति में जन्म जन्मान्तरों से दासता ही चली आती है, इससे हृदय, मन अति दुर्बल हो गया है। विवेक दृष्टि द्वारा विचार पथ में चलने से हृदय जब मजबूत हो तब स्वतंत्रता, मुक्ति मिले। दासता–बन्धन की एक सीमा होती है, पर मुक्ति की कोई अवधि, सीमा नहीं। जो कुछ भी मनुष्य बनाता है वह सब सीमित है। पर ईश्वरीय दुनिया की हर एक वस्तु असीम है। यह भी याद रखना कि कभी कभी तुम अपने परम लक्ष्य की ओर बढ़ते हुए विविध कष्टों से अपने को घिरा पाते हो, तो धैर्य के साथ विवेक दृष्टि से देखने से पता चलेगा कि तुम अपने पथ में तीव्रता से गति कर रहे हो और अपने समीप–वर्ती संसार का ऋण चुका रहे हो।

देखो फल की इच्छा न रखो, क्योंकि इसी के कारण तुम्हें कर्म करने को बाध्य होना पड़ता है और कर्मफल सुख रूप में भोगने से पुण्य क्षीण होता है, और दुख फल

भोगने से पाप क्षीण होता है। तुम्हें बांधने वाली डोरी तुम्हारी ही रह एक वासना है। वासना ही तुम्हें इधर उधर लोक, परलोक, में घुमाती रहती है। यह भी देख लो कि तुम जितने भी सुन्दर रम्य पदार्थों को देखकर मोहित होते हो उन्हीं के भीतर कुरूपता, अरम्यता गर्भित है। इसी प्रकार सब सुखों के पीछे परिणाम में दुख छिपा रहता है।

तुम्हारी वासना के अनुसार ही तुम्हारा पुनर्जन्म निश्चित होता है। यह भी स्मरण रहे कि अपने भावों के अनुसार ही तुम संसार को और संसार के पदार्थो को देखते हो। वास्तविक रूप किसी भी वस्तु का कुछ भी हो, लेकिन तुम जिस वस्तु का जिस भाव से चिन्तन करते हो वह वस्तु तुम्हे वैसी ही प्रतीत होगी। यदि तुम विष को भी अमृत रूप से चिन्तन करो तो विष भी अमृत हो जायेगा। शत्रु को भी मित्रभाव से चिन्तन करने पर वह मित्र बन जाता है। दृढ़ अभ्यास के द्वारा तुम मन में जिस प्रकार के भाव को स्थिर कर लेते हो उसी प्रकार की क्रियायें चरितार्थ होने लगती है, वही वासनायें दृढ़ होती है, तुम उसी प्रकार की वस्तुओं से घिरे रहते हो।

पूर्वकाल में जिस प्रकार के अभ्यास से तुम्हारी वासनायें दृढ़ हुई हैं, उन्हीं की साकार मुर्ति तुम्हारा यह शरीर है। वासनाओं के पवित्र होने से ही मन पवित्र होता है और तभी शरीर भी सुन्दर स्वस्थ पाया जाता है। पर जिसकी वासनायें अशुद्ध होती है। उसका मन भी अशुद्ध होता है, तदनुसार उसका शरीर अस्वस्थ और असुन्दर भी देखा जाता है। सांसरिक पदार्थों की वासना या ऐहिक सुखों की वासना दृढ़ होने को ही बन्धन कहते है। किसी वस्तु की इच्छा या किसी से द्वेष करना ही बन्धन है।

तुम्हारा बन्धन और मुक्ति मन ही के हाथ में है। मनोभावों के अनुसार ही तुम्हारी स्थिति है। तुम्हारे मन में जो निश्चय दृढ़ हो गया है, उसे तुम्हीं हटा सकते हो। यदि तुम अपने मनोबल को शुद्ध और दृढ़ एवं प्रभावोत्पादक बनाना चाहते हो तो विवेक दृष्टि द्वारा अज्ञानान्धकार से निकल कर अंहकार और आशक्तियों से अपने मन को मुक्त करो। सभी प्रकार की अशक्ति परमार्थ–साधन में बाधक है। केवल सत्स्व–रूपा शक्ति ही परम कल्याणमय है।

विविध पदार्थों की अशक्ति से मुक्त मन में ही दृढ़ संकल्प बल केन्द्रित होता है। इसी बल के द्वारा तुम शक्तिशाली प्रलोभनों पर विजय प्राप्त कर सकोगे।

तुम निम्न प्रकृति की इच्छापूर्ति के पक्षपाती कभी न बनो फलाशक्ति, कर्माशक्ति, संस्कारशक्ति, एवं कर्तव्यभिमान से रहित होकर प्राप्त कर्तव्य को (परम लक्ष्य की ओर दृष्टि रखते हुए) करते चलो।

कोई अच्छा शुभ कर्म भी वासना को रखकर करने से बन्धनकारी होगा। सुखेच्छा के वशीभूत होकर बारम्बार किया हुआ कार्य स्वभाव बन जाता है, यह भी बन्ध ान ही है भावोद्वेश्य की निकृष्टता के कारण देखने में शुभ कर्म भी दुख बन्धन का कारण हो जाता है और भावोद्वेश्य की पवित्रता के कारण एक निकृष्टकर्म भी पुण्य सुख का उत्पादक होता है।

देखो! सावधान होकर देखते रहो, अपने को कहीं भी कुछ बनाओ मत, क्योंकि जो वस्तु बनाई जाती है, वह बिगड़ती भी है यह बात भी समझ लो। बहुधा काम क्रोध ामोहादि की दुर्भावना को त्याग करने एवं इनके आवेगों से बचने की जगह तुम और भी उल्टा इन्हीं के शिकार होते रहते हो, इसका कारण यह है कि तुम किसी दुर्व्यसन को छोड़ने की धुनिमेउस दुर्व्यसन का ही अधिक मनन करते हो। उस पर ही अधि ाक ध्यान देने से तुम्हारे स्नायुजाल में तदनुसार भावों और कम्पनों का असर होता है, इसी से वहीं से क्रिया रूप में चरितार्थ करने की भावना होती है। किसी भी दुर्व्यसन का तीव्रता के साथ विरोध करना, भीतर ही भीतर हठ से दबाये रहना, स्वयं एक ओर से उससे दृढ़ सम्बन्धित रहना है। बल्कि तुम्हें चाहिए कि उस दुर्व्यसन को स्मरण तक न करो और जब कभी संस्कार वश उस दुर्भाव की झलक दिखाई देवे तब उसके विरूद्ध किसी सद्व्यसन, सद्गुण का आदर्श सामने रखकर उसी के भावों, विचारों से अपने को पूर्ण रखो।

साधनाभ्यास का दबाव पड़ने पर सम्भव है कि तुमसे निम्न स्तरों की अनुचित इच्छायें, वासनायें ऊपर उभड़ आवे तो उनका अनाशक रह कर शान्ति धैर्य के साथ

सामना करो। साधना की हर एक पद्धति, प्रक्रिया में बड़े धैर्य और निरन्तर प्रयत्न के साथ कटिबद्ध रहना चाहिए।

ऐ पथिक? यदि तुम परमलक्ष्य परमानन्द को समझ चुके हो, और उसकी ओर चल पड़ हो, तुम्हारी विवेक दृष्टि खुल रही है तो अब तुम किसी अनुचित अंधकार में चमकती हुई वस्तुओं की चमक दमक परमोहित न होओ। नहीं तो तुम्हें बड़े कष्टों और कठिनाईयों का सामना करना पड़ेगा। तुम्हें बहुत ही सावधान रहना होगा कि अपने परम लक्ष्य परमाधार के आगे, ऐहिक कामनाओं, संस्कार जनित सुखाभिलाषाओं के बादल न आ जावें कि तुम्हारे विचार–पथ में विवेक दृष्टि के आगे अंधेरा छा जावे और तुम लक्ष्य ही भूल जाओ।

ध्यान रहे इस परमलक्ष्य परमानन्दाधार के अतिरिक्त और सभी ओर, सभी दिशाओं में सारा विश्व विष से भरा पड़ा है, अपने परम लक्ष्य से दृष्टि हटाते ही तुम संसर्गदोष से कितने ही दिनों की धारणा शक्ति क्षण मात्र में नष्ट कर देते हो। यदि तुम अपने परम लक्ष्य से नहीं डिंगना चाहते तो अपने संगी साथी और प्रारव्ध, संस्कार जनित परिस्थितियों से सदा सावधान रहो। अपने परमामृत आधार को न भूलो तभी इस विषाक्त जगत को पार कर सकोगे।

स्मरण रहे उसी समय तुम्हारे दृष्टि के आगे धुंधलापन आ जायेगा, जब तुम अपनी कामनाओं के पीछे दौड़ना शुरू करोगे, तब तुम उस सत्य प्रकाश के पथ में न जाओगे। सावधान रहो कि तुम्हारे ही मनोविकार तुम्हारी उन्नति में बाधक और दुखद हो सकते है। अतः इन पर दृढ़ संयम रखो। देखो जब तुम्हारी सद्‌गुरू प्रदत्त विवेक–दृष्टि कुछ विकृत हो जाये तो कहीं भी इधर उधर मत दौड़ो। अपने पथ प्रदर्शक सन्तो की शरण में जाकर अपनी क्षति ठीक करो, यही एक मात्र उपाय है। अपने सद्‌गुरू के ध्यान को कभी न भूलो, तुम्हारी यात्रा उन्हीं की परम कृपा से हो रही है।

वैसे भी सज्जन महान पुरूषों के उपदेश, सलाह को प्रेम से सुनना हितकारी है पर दूसरों को सलाह उपदेश देने के लिए उतावले न बनो। हर प्रकार की उपाधि,

विवाद को तुम जहां तक छोड़ सको वहां तक छोड़ते ही जाओ। क्योंकि यह सब बातें तुम्हारी सच्ची उन्नति में बड़ी बाधा डालेगी। इन बातों से तुम बड़ी जल्दी अहंकार के मार्ग पर अशान्त, कलान्त होकर फिसल जाओगे।

हर समय अभिमान रहित, सरल हृदय रहना, शान्ति की सुन्दर वेशभूषा से सुसज्जित रहना है। विपत्तियों से तुम अचानक घबरा न जाओ, देखो विपत्तियों ही तो प्रायः तुम्हें नम्न, सरल बनाती हैं, उसी समय विवेक दृष्टि से देखने पर अंहकार नष्ट हो जाता है।

किसी की ओर से विश्वासघात और निन्दायें, अपमान भी बड़ी अच्छी बातें है, क्योंकि यहीं तुम संसार के सम्बन्धों से आशक्ति, मोह हटाकर, अपने परमानन्दाधार की ओर दृष्टि घुमाते हो और दुनियां की ओर से विरागी बनते हो।

देखो! तुम इधर उधर भागते क्यों हो, तुम्हें ऐसा कोई स्थान सुरक्षित नहीं मिल सकता, जहां कुछ न कुछ असुविधायें आपदायें, प्रलोभन न होवें, अतः अपने अन्तर्निहित सत्य, बल पर विश्वास कर भीतर की ओर देखो।

तुम किसी प्रकार की निश्चित शक्ति, प्रवाहगति को रोक नहीं सकते। वरन् विवेक दृष्टि से किसी भी घटना से अपनी रक्षा कर सकते हो। तुम सर्दी, गर्मी, वर्षा को रोक नहीं सकते। पर इन द्वन्दो से अपनी रक्षा कर सकते हो, कोई भी सत्पय विरूद्ध आकर्षण हो, बड़ी सावधानी से धीरज, विनम्रता सहनशीलता, बुद्धिमता, वीरता के द्वारा अपने अर्न्तनिहित सत्य बल एवं सद्गुरू कृपा पर विश्वास रखते हुए, अपने सत्य आदर्श पर दृढ़ रहो।

प्यारे पथिक! तुमने तो अपने लक्ष्य को समझ लिया है। अब सत्य के पथ में दृढ़ता से चलते हुए इस दुनिया में फिर क्यों ललचाओ! तुम पथिक हो, देखो जो परमानन्द के सच्चे भक्त पथिक है। उन्होनें वर्षा, शीत, आतप के तमाम दुखों को सहते हुए, थकावट और जागरण के साथ क्षुधा कृषता दुख में भी अपने धैर्य को न छोड़कर सहनशीलता द्वारा तमाम तरह की निन्दा, उपेक्षा घृणा, का समचित होकर सामना किया है और वे अपने परमाधार आनन्दमय प्रभु को कभी नहीं भूले। तुम भी

इन्हीं पथिकों के सत्पय का अनुसरण करो। देखो वे निर्भय पद को किस तरह प्राप्त हुए है।

तुम अपने पथ में तब तक उन्नति पूर्वक नहीं बढ़ सकोगे, जब तक जन समाज से आन्तरिक सम्बन्ध न तोड़ लोगे। अधिक जन संसर्ग से तुम ऐसे विषाक प्रभाव द्वारा अपने को अशान्त पाते रहोगे कि अपने परम लक्ष्य की ओर बढ़ने में अशक्ता, निर्बलता प्रतीत होगी। जन–संसर्ग में पड़कर तुम्हारा जो माइक छद्म वेषी सुखों के संसार से अनुराग है। इससे बढ़कर अनिष्टकर और तुम्हारे लिए क्या होगा? इस संसार से जो तुम्हें गौरव भी प्राप्त होता है (यहां के किसी भी वैभव के झोका बन जावो) तो क्या? यहां तो प्रत्येक सुख के पीछे दुख छिपा रहता है। प्यारे पथिक! तुम अपनी विवेक दृष्टि से देखो, तुम्हारी वैभव सामग्री ऐश्वर्य शक्ति, तुम्हारा गौरव तुम्हारे भीतर निहित है। अरे! तुम क्यों इस संसार के सामने दरिद्र होकर हाथ पसारते हो? तुम यहां पर विश्राम सुख की आशा न कर पुरूषार्थ करो। वहां किसी से सहायता की आशा न रखकर धैर्य धारण करो और सहनशीलता बल के द्वारा दुखों का चुप चाप सामना करो, यही तुम्हारी तपस्या होगी।

तुममे जितनी ही महानता बढ़ेगी उतना ही तुम नम्र विनयी होते जाओगे। तुममे असार महिमा की भूख न ही रद्द जायगी, जिसके लिए तुम अभी तक उधर हाथ पसारते थे। सोच कर देखो प्रायः मनुष्य विनाश पथ पर ज्यादा दिखाई देते है पर सत्य जीवन की ओर ध्यान नहीं देते, पर कभी न कभी तो हर एक को वहीं वापस आना पडेगा। यह कितने सौभाग्य की बात है कि अपना जीवन व्यर्थ न खोकर शीघ्र से शीघ्र इस परम लक्ष्य का पथिक बन जाये परन्तु इस सत्य जीवन के जितना ही किसी लम्बे वाद विवाद में पड़ोगे, उतना ही तत्पश्चात अपनी शान्ति भंग हुई दिखाई देगी, क्योंकि वाद विवाद में निरर्थक ही शक्ति का हास होता है।

जब तक तुम इस भौतिक जगत को ही देखते रहोगे तब तक तुम्हारा मन नाना प्रकार के शारीरिक एवं स्थूल इन्द्रियों सुख भोग की कामनाओं के बोझ से दबा रहेगा। तुम ध्यान देकर देखो, संसार में ऐसा कौन है कि जिसे अपनी इच्छित सभी वस्तुएं

मिल गई हो। रंक से लेकर राजा महाराज तक, पापी से लेकर धर्मात्मा तक इस भौतिक जगत में पूर्ण रूप से कोई तृप्त सुखी न देखा गया। एक न एक अभाव कुछ न कुछ अपूर्णता सभी को सामने लटकती रहती है। तब पूर्ण सुखी कौन है? वही जिसे पूर्ण का बोध हुआ है वही ज्ञानी पूर्ण तृप्त, पूर्ण सुखी हो पाता है। अतः सौभाग्यवान वही है जो पूर्णानन्दमय परमाधार परमतत्व को प्राप्त करने के वास्ते त्यागी तपस्वी बनता है।

तुम्हें अपने परम लक्ष्य की ओर बढ़ने में सावधान रहना होगा। कभी कभी चाहे जिस प्रकार की तुम्हारे ऊपर विपत्ति के बादल छाये हो पर घबराओं नहीं, स्मरण रखो कि वही परीक्षा का समय है। धैर्य धारण करों, जो कुछ भी आयेगा वह कुछ न रहेगा। केवल अपने परमाधार लक्ष्य को ही देखो। उसे पाने के लिए पहले तुम्हें नाना प्रकार के दुख, सुख, अंधकार, प्रकाश, आग, पानी के बीच होकर चलना ही पड़ेगा।

ऐ पथिक! तुम अपनी इस यात्रा से दूसरों की सहायता का भरोसा रखने की अपेक्षा अपने अन्तर्बल का विश्वास करो। तुम्हारे साथ केवल श्री सद्गुरू की कृपा ही बहुत विशेष है उसी विश्वास पर उत्साह पूर्वक इधर उधर न झांकते हुए सामने पैर बढ़ाओ। अपने समीपवर्ती संसार (बन्धु बान्धवों) पर निर्भर रहकर इस यात्रा में देर न करो। अरे यह सब तुमको तुमसे भी पहले भूल जायेगें। इन सब का साथ छूट जायेगा। याद रखे, आज यदि तुम अपने दिन के दिन असावधानी में खो रहे हो तो एक ऐसा भी समय आयेगा कि एक घंटा भी समय शायद मांगने से न मिलेगा।

आगे अपनी कुवासनाओं और अपराधों एवं असावधानी के कुफल भोगने की अपेक्षा अभी ही उन वासनाओं, अपराधों और असावधानी को दूर करो। यही तो बुद्धिमानी है। भविष्य को तुम स्वेच्छित विधि से अनुकूल बना सकते हो। जब तक तुम संसारिक विषय सुखों से अपने मन को हटा न लो तब तक उनक मादकता में मुग्ध होकर मन तुम्हें वहीं फंसाये रहेगा। यदि तुम इस निर्बलता पर, इस मन की विषयाशक्ति पर विजय प्राप्त कर लो और उत्तम गुणों से इस मन को भर दो तो

संसार की सभी शक्तियां तुम्हारी उन्नति में सहायक बन जाये। पथिक को पहले तो नाना प्रकार के दुखों से तप कर शुद्ध होना पड़ेगा, तभी सच्ची शान्ति मिलेगी।

यदि तुम अपने जीवन की तुच्छ सफलताओं पर ही संतोष कर लेते हो तो यह तुम्हारी निर्बलता है। तुम अपने परम लक्ष्य को ही भूल जाते हो। यदि तुम कुछ चमत्कार दिखाने की चेष्टा करते हो, तो तुम्हारे भीतर दम्भ तथा लोभ छिपा है, तब भी तुम अपने परम लक्ष्य को भूल जाते हो। यदि तुम अदृश्य भुवलोक के प्राणियों को और वहां के दिव्य रूपों को, शब्दों को ही देखने सुनने के लिए प्रयत्नशील हो तब भी तुम सत्य लक्ष्य को भूल जाते हो। यदि तुम जनता के सामने किसी प्रकार का भविष्य बतलाकर लोगों को श्राप, वरदान देकर सिद्ध महात्मा बनते हो तब भी तुम अपने लक्ष्य को भूल जाते हो। यदि तुम लोगों के सामने बहुत अधिक विद्वान समझे जाने के लिए अनेकानेक धर्म ग्रन्थों का अध्ययन करते हो, अपना नाम प्रसिद्ध करने के भाव से अच्छे ग्रन्थ लिखते हो, तब भी तुम अपने परम पवित्र लक्ष्य को भूल जाते हो।

यहां पर जब तुम किसी भी व्यक्तित्व से बहुत अधिक घनिष्ठता दृढ़ कर उसी पर निर्भर रहने लगते हो, और मनुष्य के क्षणस्थाई प्रेम, कृपा के लिए हाथ पसारते हो तब भी तुम अपने लक्ष्य को भूल जाते हो। जब तुम किसी तरह के अपना से या किसी प्रकार की हानि के पश्चात, दुख, शोक से व्याकुल होते रहते हो तब भी तुम अपने लक्ष्य को भूल जाते हो।

तुम इसे न भूलो कि पाप और दुखों के मध्य से भी पुण्य, आनन्द का द्वार खुला रहता है, सब दोषों के बीच में भी सत्य का निवास स्थल है। यदि विवेक दृष्टि खुल जाये तो अनित्य के हृदयस्थल में ही नित्य का निर्विकारस्थल तुम्हें दिखाई देने लगेगा। हर एक वस्तु में जो तुम्हें सौन्दर्य, सदगुण का दर्शन होता है, वह उसी समय अनन्त सतस्वरूप की ही सत्ता का सौन्दर्य हैं पर तुम अज्ञानता से किसी वस्तु पर ही मुग्धाशक हो जाते हो। विवेक—दृष्टि से उस परम लक्ष्य परमाधार को देखो जो प्रत्येक नाम रूप में प्रकाशक है।

ऐ पथिक? तुम अपनी यात्रा के आरम्भ में ही भली प्रकार सावधान हो जाओ। अपनी विवेक दृष्टि से खूब अच्छी तरह पथ को देखते हुए अब परम लक्ष्य की यात्रा आरम्भ करो। देखो आरम्भ में यदि कहीं भूल गए तो जाने कहां भटक जाओगे। तुम्हारी यह परम लक्ष्य की ओर जो यात्रा हो रही है इससे आरम्भ को शुद्ध रूप में चरितार्थ करना ही परम सफलता को हस्थगत करना है।

अब अपना हर एक आरम्भ सम्हाल लो। तुम आरम्भ को तुच्छ, छोटा न समझो, देखो एक विशाल वृक्ष का आरम्भ छोटे बीज से तत्पश्चात अंकुर या पौधे से शुरू होता है, उसके प्रथम आरम्भ में ही यदि असावधानी की जाये तो वह विशाल कार्य वृक्ष भला कैसे हो सकता है। एक नदी जो अपनी दुत गामिनी धारा से अपने किनारे पड़ते हुए बड़े बड़े वृक्षों को उखाड़ गिराती है, वह आरम्भ में एक छोटी सी नाली के रूप में अपने मूल श्रोत से प्रवाहित होती है।

एक महान पुरूष, विद्वान पुरूष जो अपनी प्रतिभा बुद्धि विशालता से, दुनिया को चकित करते हुए विजयी जीवन बिताते है, वह अपने आरम्भ में छोटे से खिलौने के साथ खेलते हुए बालक रूप में दिखाई देते थे। पर आरम्भ शुद्ध प्रगतिशील होने से वे महानता को धारा कर रहे है। तुम्हारे भीतर से वही गुण या दुर्गुण मूर्खता या विद्वता सद् चरित्र या दुश्चरित्र प्रगट होगे, जिस प्रकार का बीज आरम्भ में पड़ गया है और उसी प्रकार अपने बीज के अनुसार तुम फल भी काटोगे।

ऐ बुद्धिमान पथिक! सावधान! आरम्भ को ही संभालो। जीवन का आरम्भ युवावस्था का आरम्भ, विद्या का आरम्भ, व्यवसाय का आरम्भ, साधना का आरम्भ, इत्यादि सभी आरम्भों को यदि शुद्ध पूर्णतत्परता से सम्हालोगे, तभी सफलता सुन्दर होगी। सर्व प्रथम तुम अपने दिन के प्रारम्भ प्रातः काल ही को शुद्ध रूप में प्रकाशित करो, तुम देखोगे कि दिन भर का शुभ या अशुभ परिणाम प्रातःकाल के प्रारम्भ पर ही निर्भर है। किसी प्रारम्भ को यदि तुम निर्बलता, आलस्य, प्रमाद, निराशा, ग्लानि, खीझ से शुरू करते हो तो अपनी सारी यात्रा को कलुषित कर लेते हो।

और यदि आरम्भ को ही उत्साह, साहस, आशा, धैर्य, पूर्वक सुसज्जित करते हो तो बड़ी जागृति पूर्वक तुम धीरता के साथ लक्ष्य प्राप्ति के लिए अग्रसर होते जाते हो।

सावधान होकर, तुम आरम्भ में ही अपनी भूलों, कमजोरियों को क्षमा न करो, आगे दिन पर कभी न टालो, नही तो प्रथम ही अपशकुन हो रहा है और यदि आरम्भ ही से तुम अपनी त्रुटियों, निर्बलताओं, कुसंस्कारों का अंहकारमय जीवन की लालसाओं का सामना करोगे तो निस्संदेह तुम विजयी जीवन प्राप्त करोगे। ऐ पथिक, यह आरम्भ सम्भालने की बात जो सुन रहे हो, यह संतो की बहुत ही मूल्यवान बात है, खूब समझ लो। यदि तुम अपने अन्तर असत्य समर्थक अंह बुद्धि का लालन पालन करोगे तो इससे तुम्हारी ही (शक्ति समय सुख सम्पन्नता की) हानि होगी। अतः अपने दोषों को दयालुता से कहीं न देखो, आरम्भ से ही इन्हें निकाल बाहर करो। देखो प्रारम्भ ही से शुद्ध भावानुसार सद्कार्यों से पवित्र जीवन तेज प्रकाश से पूर्ण होता है। अपना प्रारम्भ ही सम्हालो।

तुम आरम्भ से ही अपने परम लक्ष्य परमाधार पर इतनी गहरी दृष्टि रखो कि कहीं धोखा न हो जाये। उसी के लिए सब कुछ त्याग करो। पर और सब कुछ के वास्ते अपने लक्ष्य के पथ में कहीं भी अब असावधानी, कमजोरी न आने दो। तुम आरम्भ के किसी छोटे छोटे कार्यों को भी न भूलो, क्योंकि इनसे तुम अपने भीतर कमजोरी, आलस्य को ही पुष्ट करोगे। यदि तुम अपने छोटे छोटे दोषों को, साधारण भूलों को भी बहुत बड़ी हानि समझोगे तो अवश्य ही तुम महान बन जाओगे। तुम जितना ही अपनी विवेक दृष्टि से अपने पथ में चरित्र संशोधन, सन्मार्ग, निरीक्षण का काम लोगे उतना ही यह दृष्टि दूरदर्शी होकर दिव्यता धारण करेगी।

देखो, तुम समय समय पर यदि कठिनाईयों के संकट से अपने को घिरा पाओ तो घबराओं नहीं। घबराहट, चिड़चिड़ापन, एक बहुत बड़ी दुर्बलता का घोतक है। अतः इसे विवेक दृष्टि द्वारा ठीक ठीक समझो और सावधान रहो कि यहीं से तुम्हें शक्ति और ज्ञान की प्राप्ति होगी। देखो, तुम्हें कठिनाइंया वहीं दिखाई पड़ेगी कि जहां तुम अपने करणीय कर्तव्यों को अवहेलना करोगे। उसी के परिणाम में कठिनाई उपस्थिति

होती है। पर हर एक कठिनाई को विवेक दृष्टि द्वारा तुम कर्म–कौशल, शक्ति सम्पन्नता से जीत सकते हो निराशा, घबराहट, निरर्थक ही नहीं वरन् मूर्खता भी है।

यह अवश्य है कि तुम जब अपने अन्तर्क्षेत्रगत किसी भी स्वार्थ संस्कार को काटोगे तो पीड़ा उसे होगी ही, पर उस पीड़ा के पश्चात स्थाई सुख की उपलब्धि होती है। जब तुम किसी भी दोष के सामने अधरी हो जाते हो तब तुम उसे और भी पुष्ट करते हो। अधीरता को जगह धैर्य धारण करो, साहस करो। ऐ पथिक? तुम्हारे साथ कितने ही प्रकार के उद्वेग ही पीड़ाये है और अज्ञानता ही खेद है और स्वार्थ ही बोझ है। अब तुम यदि अपने परम लक्ष्य के (विचार रूपी) पथ में चलना शुरू कर रहे हो तो विवेक दृष्टि द्वारा अपने आगे पीछे, ऊपर नीचे देखो। ऊपर लदे हुए स्वार्थपरता के बोझ को उतार फेंको। नीचे प्रलोभनों की फिसलन से सावधान रहो। पीछे खींचने वाले, आशक्ति ममता मोहादि बन्धनों से अपना पल्ला छुड़ा लो। आगे छदावेशी मनोहर दृश्यों के आकर्षण से अपने को बचाते रहो। इन सब कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने के लिए आगे तुम्हें अब त्याग रूपी दिव्य अस्त्र मिल रहा है। इसे ही पकड़ो और आगे बढ़ो।

त्याग

ऐ बुद्धिमान मानव रूप में परमानन्द के पथिक! देखो, संतों, महात्माओं एवं श्री सद्गुरूदेव के शब्दामृत को पान करते करते तुम्हें यह पता चला कि परमानन्द रूप परम लक्ष्य की प्राप्ति का एक मात्र सद्विचार ही पथ है। पुनः इसी अमृत प्रसाद से तुम्हारी इस पथ में यात्रा करने के लिए सद्विवेक रूपी दृष्टि खुल गई। अब इसी दृष्टि से सावधान होकर देखो, कि तुम्हें एक एक पग रखना कितना कठिन हो रहा है। देखो तो! तुमने अपने ऊपर इस क्षुद्र अंह की अगणित कामनामों, इच्छाओं की स्वार्थपरता का भार लाद रखा है और अपने नीचे देखो, कितने प्रकार के प्रलोभनों की फिसलन तुम्हें एक क्षण भी सावधान नहीं होने देती। पीछे से संस्कार जनित विविध प्रकार की अशक्ति, ममता, मोह आदि तुम्हारे दामन को पकड़ कर खींच रहे है, और आगे नाना प्रकार के छदावेशी आनन्द के रूप में तुम्हारे भोले मन को आकर्षित कर रहे है। अब तुम्हारी अपने परम लक्ष्य की ओर प्रगति हो तो कैसे हो? परन्तु हर्ष, परम हर्ष मनाओ। अब तुम उस सान्त्वना, आश्वाशन के निर्भय स्थान पर आ पहॅुचे हो जहां कि संतो महात्माओं का परम आर्शीवाद तुम्हारी रक्षा करेगा। अब तुम उनके शब्दामृत प्रसाद के बल पर सभी प्रकार की कठिनाइयों को पार कर सकोगे।

देखो, विवेक दृष्टि से आगे देखो! अपने परम लक्ष्य के दिव्य द्वार पर ही स्वर्णाक्षरों से लिखा हुआ है त्याग। यही नहीं! और दूर दृष्टि दौड़ाओ, इस परम लक्ष्य के पथ में आगे बढ़े हुए पथिकों की चमकती हुई तेजोमय आकृति, प्रकृति में भी अंकित दिख रहा है–त्याग। और वे अपने पीछे आने वाले पथिकों को अपने सुन्दर स्वरों से मानो यही मंत्र गान सुना रहे है–त्याग।

चलो, वीर पथिक! तुम भी इसी आधार को पकड़ो। इसी दिव्य अस्त्र के द्वारा अपने ऊपर भारस्वरूप लदी हुई क्षुद्र अहं की इच्छाओं, कामनाओं को उतार फेंको। इसी के सहारे अपने नीचे प्रलोभनों की फिसलन को पार करो और अपने पीछे संस्कार जनित अशक्ति ममता मोह के बन्धनों को काट दो, फिर तो आगे छभवेषी आनन्द के रूपों का आकर्षण विवेक दृष्टि से स्वयं ही दूर हो जायेगा। ऐ पथिक। तुम

नाना प्रकार की वासनाओं के बोझ से दब रहे हो, पहले इन्हें दूर करो। प्रत्येक स्तर से तुम्हें इन्हें दूर करना पड़ेगा, तभी तुम इस दुर्गम मार्ग में पैर बढ़ा सकोगे।

अज्ञानता के कारण अब तक तुम विनाश के पथ में चलते रहे, परन्तु अब विवेक दृष्टि से जीवन के पथ में पथिक बन रहे हो तो सर्व प्रथम इस देहाभ्यास का त्याग करो, और सत्ः स्वरूप से तन्मय बनो। अरे यह आनन्द का छवेश है जो तुम्हें नाना भांति के विषयों में प्रतीत होता है, यहां परमानन्द कहॉ? तुम किस चमक दमक को देख कर भूल रहे हो, विवेकीजन विषयानन्द भोग का विषवत त्याग करते हैं। उस परमानन्द का दर्शन इन इन्द्रियों के द्वारा नहीं कर सकते। वह तो दिव्य विवेक दृष्टि से देखेगा।

तुम अब माया के इन मधुर रूपों में, इन मधुर स्वरों में क्यों मोहित होते हो। यहॉ तो धोखा खाते, दुख उठाते कितने युग बीत गए। अपने परम लक्ष्य को देखो, इस भ्रम का त्याग करो। अपनी मनोवृत्तियों से इन विषयों का त्याग करो। और अपने सद्गुरू के शब्दामृत को पान करते हुए जीवन की ओर बढ़ो। इस दुर्गम पथ में बढ़ने के लिए अपने प्रत्येक असत संकल्प का त्याग करो। यदि तुम किसी भी स्तर में कोई वासनात्मक संकल्प छिपाये रहोगे तो वही तुमको कभी न कभी नीचे गिरा देगा और पुनः तुम्हें वही श्रम करना ही पड़ेगा।

इस पथ में वही वीर पथिक समझा जाता है जो अपनी वासनाओं का त्याग करने में समर्थ हो रहा है। और आगे मंजिल तय कर जाने पर तो महापुरूष वासनाओं के अनुभव तक का त्याग कर देते है। अब तुम अपनी मनोभूमि में कभी भी अधम वृत्तियों को न खेलने दो, इनका त्याग करो, नहीं तो तुम्हारी सत्य–जीवन–संरक्षिका उच्च वृत्तियां तुम्हारी सेवा नहीं कर सकेगी, तब तुम अपने आध्यात्मिक देह को भी इस दुर्गम पथ की यात्रा के योग्य नही बना सकते। स्मरण रहे। अब तुम्हारे भीतर शुद्ध संकल्प की दिव्य सृष्टि में एक भी कुसंकल्प भूत न घुसने पावे, नहीं तो तुम्हारी समस्त शान्ति सत्ता छिन्न भिन्न हो जायेगी।

तुम्हें अपनी उन्नति एवं सफलता के लिए हर कदम पर त्याग का ही मंत्र जपते रहना चाहिए। तुम जितना ही कामना रूपी बोझ से अपने को हल्का करोगे उतना ही तेजी और सुख के साथ बढ़ सकोगे। पूर्ण निष्काम होने के लिए समस्त कामनाओं को काट कर फेंक दो। जितना ही तुम्हारे मन से इच्छाओं का क्षय होता जायेगा उतना ही तुम निराशा और शोक रूपी पिशाची–पिशाच से छुटकारा पा जाओगे, जो कि तुम्हारे सिर पर प्रायः सवार रहते है। जितना ही तुम अपनी इन्द्रियों की स्वेच्छा चारिता का त्याग करोगे उतना ही सत्य संसार में वैभव शक्ति के स्वामी बनोगे।

स्मरण रहे कि जब तक तुम्हारे भीतर कहीं घृणा, कहीं असंतोष, व्यर्थ की लालसाये, कहीं विषय लोलुपता, आदि भंयकर विकार भरे है। तब तक यह सब तुम्हारी जीवन शक्ति सम्पत्ति को नोच नोच कर खाते रहेगें। अतः इनका खोज खोज कर विस्मृति के सागर में डुबो दो और धैर्य, दयालुता, संयम स्वाभाविक स्नेह, पवित्र कांक्षाये ये सब जीवन सुधारक शक्तियां है, इन्हें निरन्तर अपने में आत्मसात कर लो।

प्रथम तो तुम्हें सद्वासनाओं को प्रधानता देकर अपवित्र वासना का त्याग करना है पुनः आगे चलकर सद्वासना को भी त्याग देना होगा, क्योंकि वह भी बन्धनकारी होती है। सद्वृत्तियों के द्वारा सद्वृत्तियों का त्याग करो, सद्गुणों को बढ़ाते हुए दुर्गुणों का त्याग करो। अविनाशी जीवन को प्राप्त करते हुए इस विनाशी जीवन का त्याग करो। जब तक दुर्दमनीय वासनायें, भोग लिप्सायें अपनी अतृप्त क्षुधा के कारण दरिद्रता की आकृति में जीव की संगिनी बनी है तब तक वहां भला शान्ति देवी कैसे आ सकती है?

ऐ पथिक! तुम विवेक दृष्टि से देखते हुए इन वासनाओं, भोग लिप्साओं को त्यागास्त्र द्वारा, बड़ी युक्ति से गम्भीरता से नष्ट भ्रष्ट कर दो। तभी तुम परम शान्ति के भव्य द्वार में प्रवेश करोगे। वहीं पर सुन्दर सद्गुण स्वरूप देव, देवियां तुम्हारा स्वागत करते हुए तुमसे मिलेगी।

ऐ पथिक! सावधान होकर, विवेक दृष्टि से सतत जागृत रह कर, इस त्यागरूपी अस्त्र के द्वारा मन की समस्त दुर्बलताओं को दूर करो। पुनः वृत्ति शक्ति, संयम

बल द्वारा काम को कराल काल के सामने कर दो, क्योंकि मृत्यु के भय से काम की सारी कुशलता नष्ट हो जाती है। जिसको यह पता लग जाय कि एक महीने में मृत्यु हो जायेगी, तो सोचो कि वह क्या करेगा। इसी प्रकार काम उस पर अपना जोर कभी नहीं दिखाता जो मृत्यु को सदा सामने अनुभव करता है। इसी प्रकार क्रोध को भी करूणा के पेट में छोड़ दो। और लोभ को लंगड़ा कर डालो ताकि यह फिर इधर उध ार दौड़ ही न सके, कहीं पड़ा रहे। और मोह को तो मार ही डालो। मत्सर का मस्तक काट दो, मद का मद ही निकाल दो। कायरता को, कार्य की बेड़ियों से कस दो। और कृपणता को कृपा की धारा में बहा दो। कठिनता को कोमलता के रंग में रंग दो। आलस्य को स्फूर्ति की दासता में जकड़ दो। अंहकार को अकेला कर दो, क्योंकि अंहकार की उत्पत्ति किसी भी उपाधि के संग दोष से ही होती है। इतना ही नहीं कि धन, जन, विद्या, वैभव, बल, मद को ही अंहकार कहते हैं, वरन् अंहकार का वास्तविक अर्थ तो यही दिखता है कि जिस वस्तु को भी तुम अपनी कहो बस उसी का अंहकार सिद्ध हो गया विवेक दृष्टि से देखने पर धन, पुत्र, स्त्री, माता, पिता को अपना कह ही नही सकते वरन् सदा जिस देह के साथ तुम तद्रूपता धारण कर रहे हो उस देह को भी विवेक दृष्टि से देखने पर अपनी नहीं कह सकते। तब बाहरी पदार्थों पर कैसा गर्व? अतः इस अहं का त्याग करो, यानी अहं को ही अकेला कर दो, फिर आगे बढ़कर सत् चिदूप आत्मा के साथ इस अंहकार को मिला दो पुनः अनेक की एकता में विलीन होने दो। यह सब कुछ तुम्हे इसी त्याग रूपी अस्त्र बल के द्वारा करना है।

इस त्याग अस्त्र के द्वारा तुम सर्वत्र विजयी होगे, अतः जहां तक दृष्टि पहुँचे, प्रत्येक प्रकार की भोगाशक्ति को तिरस्कृति के मंत्रों से तिलाअलि दे दो, और निश्चित होकर विरक्ति की विशाल छाया में स्वछन्द यात्रा करो। अपने पथ में ऐसे भावों को भूल कर भी मन में स्थान न दो जिनसे तुम्हारा सहित होता रहा हो या होने की सम्भावना हो। दुनियावी प्यार और प्रेम को प्राणहीन बना कर छोड़ दो। स्वर्ग को स्वप्रवत भूल जाओ, नर्क को नीचे ही गाड़ दो। तुम अपने परम लक्ष्य की ओर बढ़ते चलो। इस त्याग अस्त्र के सामने कुछ भी न रखो।

मानसिक विचारों में से विषय विकार विषवत विलग कर दो क्योंकि विचारों का विषयों की ओर बढ़ना ही तो विनाश पथ में जाना है, और निस्संकल्प होना ही तो उससे मुक्ति पाना है। देखो! नाशवान पदार्थों या किसी भी क्षेत्र के विनाशी, परिवर्तनशील सुखों में अन्ध आशक्ति ही स्वार्थ है। ह्रदय की तमाम लालसाओं, अभिलाषाओं का नाम स्वार्थ है। इस स्वार्थ को परार्थ सेवा की सरिता में बहा दो। ऐसा किये बिना तुम अपने परम लक्ष्य की ओर आगे कदम ही न उठा सकोगे। जिस वस्तु में तुम्हारा राग दे उसी का त्याग करो, और द्वेष मिटाने के लिए प्रेम करो।

ऐ पथिक! जिस संसार से अभी तक तुमने स्वार्थ सिद्ध किया है उसी संसार की अब सेवा करते हुए तुम इस पाप परिताप से मुक्त हो सकोगे। जो इन्द्रियों के संग से मन में विषय चिन्तन की आदत पड़ गई है वह तभी मिटेगी कि जब निरन्तर परमात्मा के चिन्तन में ही तन्मय रहने की आदत इस मन में पड़ जायेगी। ऐ पथिक! इस देहाभिमान को मिटाने के लिए निरन्तर मनन करते हुए आत्माभिमान दृढ़ करना होगा। सतत चिन्तन करो कि मैं देह नहीं, आत्मा हूँ। स्मरण रहे कि सत्य वस्तु के योग से शक्तियों का विकास होता है और इन्द्रिय सुखोपभोग से शक्तियों का विनाश होता है। साथ ही सत्य योगलाभ के लिए तुम स्वतंत्र हो लेकिन भोग के लिए परतंत्र हो। देखो! जिस प्रकार सदाचार से शारीरिक उन्नति होती है और दूसरे की सेवाओं से मानसिक उन्नति होती है। उसी प्रकार त्याग से ही तुम्हारी आत्मिक उन्नति होनी निश्चित है।

ऐ पथिक! यह स्मरण रहे कि तुम जिस प्रकार की वस्तु के प्रति कामना रखोगे उसी वस्तु की ओर तुम्हारा आकर्षण होगा। तुम अपनी कामनाओं के कारण वहीं पहुंचोगे जहां अपनी कामना की तृप्ति सरलता से कर सको। कामना एक बाहर जाती हुई शक्ति है जो अभिलषित पदार्थ को अपनी ओर खींचता है अतः अपनी कामनाओं को विवेक दृष्टि द्वारा देखो और परम लक्ष्य की सहायक कामना के अतिरिक्त और सभी प्रकार की कामनाओं को त्यागास्त्र से काट डालो। स्मरण रहे कि केवल इन्द्रियों के विषय सुखों के त्याग से ही काम न चलेगा, यदि तुम इन्द्रिय विषयों को ही रोकोगे

तो इनसे और भी आश्विक कलह, विरोध बढ़ेगा। इसलिए सर्वभावेन अंहकार की वृत्तियों तथा अहंकार को प्रिय लगने वाली समस्त वासनाओं और तज्जनित अभावों की चिन्ता एवं अज्ञानता को अंधकार सीमा से इस विवेक दृष्टि द्वारा त्याग रूपी अस्त्र के सहारे समस्त बंधनों को तोड़ते हुए बाहर आओ। बस तभी तुम अपने को इस अंहकारमय जीवन के कारागार से मुक्त पाओगे। अब आगे तुम्हें अपने को दूसरे ही प्रकार की सुन्दर सद्गुण वेषभूषा से अलंकृत करना है । अपने में दिव्य बल को विकसित करना है। ऐ पथिक! अब तुम जिस दैवत्व को प्राप्त करने चल रहे हो उसी का साधन है सदुव्योहार। इस दिव्य साधन के ग्रहण करने के लिए आत्म नियंत्रण, आत्म संयम यहीं दोनों हाथ है। इन्हीं के द्वारा सदुव्योहार रूपी सुन्दर साधन को पकड़ो और अपने सर्वाडगों को बल, तेज सौन्दर्य, शक्ति, प्रतिभा से सुसज्जित कर इस मानवता में अब दैवत्व का विकास होने दो।

ऐ जागे हुए पथिक। ध्यान देकर सुन लो, जब तुम ससांरिक सुखो के लिए इच्छा होने पर पडगुवत बन जाओगे तभी परमानन्द के पथ में तुम चल सकोगे और जब तुम ससांरिक दृश्य देखने के लिए अन्धवत बन जाओगे तभी तुम प्रेम सौन्दर्य से सुशोभित परमानन्द स्वरूप को देख सकोगे। और जब तुम ससांरिक प्रपत्रों के सुनने में बधिर वत हो जाओगे, तभी तुम परमानन्दमय दिव्यवाणी, यानी सत्य की वाणी, एवं ईश्वरीय आदेश को सुन सकोगे। जब तुम संसार के लिए सर्वाडग मौन धारण करोगे तभी उस परमानन्द मय परमाधार परमात्मन को सर्वाडगो द्वारा पकड़ सकोगे। जब तुम संसार के लिए पागल सदृश बन जाओगे तभी तुम अपने को परम मुक्ति लाभ के लिए सतत् चैतन्य पाओगे, अब आगे बढ़ो। इस दिव्यपथ में तुम्हें सदुव्योहार, सम्बल लेना ही पड़ेगा।

<u>सद्व्योहार</u>

ऐ पथिक! परम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सद्विचार रूपी पथ का पता लगा, पुनः सद्विवेक रूपी दृष्टि मिली, इसके पश्चात तुम्हें त्याग रूपी दिव्य अस्त्र मिला जिसके द्वारा अपने ऊपर, नीचे आगे पीछे होने वाले तमाम तरह के भार, बन्धन, प्रलोभन और कठिनाईयों से भरे विध्न दूर होते है। अब तुम्हें इसके आगे जिस परम बल की आवश्यकता है वह है ''सदुव्योहार'' अभी तक तुम केवल असद्व्योहार ही के कारण स्वार्थी अभिमानी अविवेकी, अहंकारी, प्रमादी, आलसी, तमाम दुर्गुण दुर्गन्ध से भरे हुए अंधकार से भटक रहे थे। पर अब तुम उसके विरूद्ध केवल सद्व्योहार ही के द्वारा अपने परम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सर्वाडगों को शुद्ध दृढ़, बलवान बना सकोगे।

चलो! सत्विचार पथ में विवेक दृष्टि से देखते हुए त्याग रूपी दिव्य अस्त्र से समस्त कठिनाईयों, रूकावटों को दूर कर अब सद्व्योहार रूपी साधन से सर्वाडगों में पवित्रता, बल सौन्दर्य, शान्ति प्राप्त करो, तब तुम इस परम लक्ष्य के निकट प्रवेश कर सकोगे। स्मरण रहे, कि जिस प्रकार असद्व्योहार की अशान्ति से दब कर सर्वाडग निर्बलता प्राप्त करते हो, उसी प्रकार वहीं पर सद्व्योहार से सुन्दर शान्ति पुण्यों के बल पर तुम परम लक्ष्य की ओर यात्रा करने में समर्थ हो सकोगे। वह शान्ति बल केवल सद्व्योहार, सदाचार से ही तुम्हें प्राप्त होगा।

सद्व्योहार के द्वारा तुम शरीर से, मन से, वाणी से, और इसी प्रकार सर्वाडगों से पवित्र बनोगे। सद्व्योहार के द्वारा दूसरों को अपनी ही तरह योग्यतानुसार अधिकार दो लेकिन किसी के अधिकार को न छीनों, क्योंकि इसी से तो मनुष्य अभिमानी बन कर जड़ता, पशुता धारण करता जाता है। तुम अपने व्योहार से घृणा, द्वेष, ईर्षा, दर्प, छिद्रान्वेषण निकाल दो। तुम अपने निर्दोष नेत्रों से ही संसार को देखो। इस दृष्टिकोण से अनुचित पश्चाताप, एवं ग्लानि का नाश होगा।

सद्व्योहार चरितार्थ करने के लिए अपने ऊपर कड़ी दृष्टि रखो। अपने प्रत्यडगों पर अधिकार प्राप्त करो। कहीं झूठी प्रशंसा के पीछे न भूल जाओ, इससे

गति रूक जाती है। सुदव्योहार के द्वारा सदा मस्तिष्क शान्त रहेगा, और वहीं तो बल शक्ति केन्द्रित होती है। वहीं बुद्धिमता का विकास होता है। पशुबल द्वारा किसी पर विजय प्राप्त करने की अपेक्षा, नम्रता, सहनशीलता, दया, क्षमा चरितार्थ करना सद्व्योहार है। जहां तक हो सके दूसरे के कार्यों में हस्तक्षेप न करते हुए सहायता देने को सदा तैयार रहना चाहिए। यह सद्व्योहार है। तुम किसी दूसरे की (क्षणिक शान्ति सुख देने वाली) वस्तुओं के लालची न बनो वरन् अपने अधिकार की वस्तुओं द्व ारा सत्य धर्म सम्मत सेवायें करते रहो। तुम दूसरों की सेवाओं के लिए जितना ही आत्मोत्सर्ग करोगे उतना ही तुम में शक्ति का विकास होगा। उतनी ही सीमा तक दुनियां तुम्हारे लिए मार्ग देगी। ह्रदय की विशालता तुम्हारे सद्व्योहारों द्वारा ही प्रगट होगी, और अन्तरात्मा की सर्वोत्कृष्ट शक्तियां विकसित होगी। तुम्हारी महत्वाकाक्षायें ही विशाल बुद्धि में परिणत हो जायेगी।

उन्नति की ओर बढ़ने पर सबसे पहली मंजिल जन सेवा है, इसी से सद्गुणों का विकास होता है। स्वार्थी संसार जो तमाम कलह, दुखान्धकार से घिरा है। उसके बीच में ऐसा मनुष्य जो जन सेवा भाव से भरा है, एक प्रकाश पुत्र की तरह चमकता है, ऊपर से वह देवी शक्तियों का कृपा पात्र बनता है। तुम अपने व्योहारों द्वारा या तो भलाई का प्रकाश फैलाते हो या बुराई का अधंकार जाल बिछाते हो।

तुम अपना भविष्य वर्तमान के सद्व्योहारो से सुधार सकते हो यदि वर्तमान की छोटी–छोटी त्रुटियों को क्षमा कर दोगे तो वही विस्तार को प्राप्त होकर तुम्हारे जीवन के बहुत बड़े भाग को दुखान्धकार से ढक लेगी। यह भी ध्यान रखो कि वास्तविक त्याग आस पास की वस्तुओं को ही त्यागना नहीं कहा जाता, वरन् अहंकार, आशक्ति, ममता का त्यागना ही त्याग है, जो व्योहारों में चरितार्थ, करना होगा। तुम कभी बीती बातों पर पश्चाताप न करो बल्कि वर्तमान समय की बातों को सुधारने में तत्पर रहो, यहीं सद्व्योहार की शरण लेनी होगी तुम्हारे व्योहारों में जिस प्रकार की अनुरक्ति, विरक्ति रहती है उसी प्रकार की वासना के कारण तुम्हारा आगामी जन्म भी पहले ही से निश्चित हो जाता है।

जब तुम अपने जीवन व्योहारों में, हर जगह में प्रत्येक कर्म में धीरता, दृढ़ संकल्प, पृथक प्रयत्न से काम लोगे तभी तुम परम लक्ष्य की ओर सफलता से बढ़ सकोगे। यदि तुम व्योहार में अहेतु की उदरता, असीम दया, और निष्काम प्रेम की चरितार्थ न कर सको, तो चाहे तुम्हें सब धर्म ग्रन्थ कराठस्य हो, तुम तत्व ज्ञानी ही क्यों न माने जाते हो, परन्तु सब व्यर्थ ही होगा, क्योंकि कर्मों का फल उसी तरह तुम्हें भोगना पड़ेगा जैसे करोगे। यह भी याद रखो, तुम किसी पापी, कुकर्मों, दुर्व्यसनी को देखकर घृणा न करो। उसका उपहास न करो। किसी को प्रत्यक्ष पाप, कुकर्म, करते देखकर भी गर्वित होकर उसकी हंसी न उड़ाओ। वरन् उसे प्रेमभाव की युक्ति से, बुराईयों से बचाने की चेष्टा करो। यदि तुम्हारे अधिकार के बाहर हो तो उदासीन रहो। सन्त का वाक्य है–

कबिरा गरब न कीजिये रंक न हंसिये कोय।
अजहूँ, नाव समुद्र में का जाने का होय।।

व्योहार में तुम गम्भीरता की नींव पर ही हर एक बात सोचो, समझो और निर्णय करो। अपनी और दूसरों की बुराई सुनकर तुरन्त विश्वास न करो। और न किसी से स्वयं कहते फिरो कि हमने यह सुना, वह सुना, न अपना अनुमान ही प्रगट करो। देखो, जो कुछ तुम अपने मन से बाहर भेजते हो उसी प्रकार के भाव, विचार वाली वस्तुयें तुम्हारी ओर खिचती है। यदि आप दया चाहते है तो दयावान बनिए। जो कुछ आप चाहते है दूसरों के साथ वही कीजिये, और वही दीजिये। तुम जितनी ही अधिक नम्रता धारण करोगे, उपाधिगत अभिमान को जहां तक बहिष्कार कर दोगे उतनी ही तुममे गम्भीरता, शान्ति, बुद्धिमानी, दूरदर्शिता बढ़ेगी।

तुम अपने परम लक्ष्य परमाधार को ही देखो। अपनी अन्तर्शक्ति पर, अपने परम गुरूदेव की अन्तर कृपा कर पूर्ण विश्वास रखते हुए, किसी अन्य मनुष्य से आशा रखकर उसके दास न बनो। किसी भी ससांरिक सम्बन्धों एवं ऐहिक पदार्थों में अपना आनन्द निर्भर न करो। सत्य पथ पर चलते हुए संसार के सामने, किसी की छोटी से

छोटी सेवायें करने में लज्जित न हो। दूसरों के सामने छोटा देखने में, गरीबी धारण करने में, लज्जित होना तो अहंकार ही है।

तुम एक एक वर्ष में यदि एक सद्गुण चरितार्थ करते हुए दृढ़ कर लो, और एक दुर्गुण दूर कर दो, तो कुछ ही दिन में तुम एक आदर्श महात्मा बन जाओगे। तुम अपने अन्तर की हर एक बुराई को, अधम वृत्ति को, कुरीतियों को भूल ही जाने का प्रयत्न करते रहो। यदि तुम इनके लिये असावधान रहोगे तो ये तुम्हें भयानक कठिनाइयों में डालती रहेगी। और देखो, विपत्तियों से तुम घबराते क्यों हो? यह तो तुम्हें नम्र बनाने में बहुत ही सहायक है। दुखों से मनुष्य के होश ठिकाने होते है। झूठे अहंकार, दम्भ, उदराडता, कठोरता की पोशाक दुखों की गर्मी से ही उतारी जाती है।

यह ध्यान रखो, तुम्हारा पतन कहां से प्रारम्भ होता है। पहले संस्कार बस या संग दोष के कारण, मन में किसी विषय की इच्छा का हल्का सा सरल विचार उठता है फिर उसे कुछ देर स्थान दे देने से दृढ़ कल्पना आती है। उसके पश्चात सुख का उन्माद उठता है, उसी में फिसलन फिर मन की स्वीकृति होती है। पुनः वही स्थूल स्तर में क्रिया रूप में परिणत हो जाता है। यही है पतन का क्रम।

यह भी याद रखो, कि दूसरों के दोषों को, भूलों को, कमजोरियों को बड़ी शान्ति और गम्भीरता से सहन करो। यही, अवसर है कि तुम सहनशीलता को दृढ़कर सकते हो। साथ ही तुममे भी ऐसी बहुत भूलें है जो व्योहार के बीच में दूसरों को उसका परिणाम सहना पड़ता है। प्रायः तुम कितनी भयानक भूल करते हो कि जब तुम अपने स्वेच्छानुसार अपने को चला नहीं पाते तो दूसरों को अपने ही इच्छानुसार बन जाने का क्यों अधिकार जताते हो? तुम दूसरों पर तो शासन करना चाहते हो पर स्वयं शासित नहीं होना चाहते। तुम्हें यदि दूसरों की अधीनता में रहना पसन्द नहीं है तो तुम दूसरों को अधीनता में रहना पसन्द नहीं है तो तुम दूसरों को अधीनता में रखकर स्वाधिपत्य भोग के लिए लोलुप क्यों होते है? यह स्मरण रखो कि इसी प्रकार पाप बीजों से दुख का पौधा उगता है।

तुम्हारे व्योहारों में जब तक भोगवासनायें, दुनियावी प्रलोभनों का अनुमोदन, पुरस्कार फल, कामनायें चरितार्थ होती है, तब तक तुम्हारी परमार्थ लाभ की ओर उन्नति नहीं हो सकती। यदि तुम किसी निश्चित संकल्प पर स्थित नहीं रह पाते और तुम किसी भी लिए हुये व्रत को भंग कर देते हो तो भी तुम्हें महानता का गर्व होता है। यह कितनी नीचता हैं। अरे अब तो तुम दीन नम्र, और निरभिमानी बनो। किसी प्रकार के भौतिक बल का क्या गर्व करते हो जो मृत्यु के पथ पर पतित हो रहा है। सदा मृत्यु को सामने देखकर सद्व्योहार, सदाचार में हर एक वस्तु, शक्ति समय, सार्थक करते रहो। इन दो बातों का अवश्य ध्यान रखो। एक तो यदि कोई भी दुर्गुण विषय हो तो उसे हटाकर दूसरे कार्य में लगे रहो, खाली भी न रहो और उसके विरूद्ध सद्गुण की मात्रा अधिकाधिक बढ़ाने का सतत प्रयत्न करते रहो। दूसरों का जो व्योहार तुम्हें नहीं पसन्द आता और जो धर्म विरूद्ध जचता है उसे तुम स्वयं किसी रूप से भी, किसी भी बहाने से दूरसों के साथ व्योहत न करो। वही व्योहार दूसरों के साथ बर्तो जो तुम स्वयं दूसरों से चाहते हो।

व्योहार के बीच यदि दूसरे लोग तुम्हारी निन्दा करें तो भी तुम उसका बदला न दो। यह तो तुम्हें नम्रता गुण पुष्ट करने का एक सुअवसर समझना चाहिए। इस प्रकार की निन्दा ही तो तुहें नम्र बनाती है। यदि तुम अपने आपको देखने की दृष्टि खुली रखो तो अनायास ही नम्रता, सरलता, तुम्हारा सौन्दर्य बन जायेगी।

इस असार संसार के पदार्थों की अशक्ति से छूटने के लिए सरलता और पवित्रता ही की आवश्यकता है। तुम्हारी इच्छाओं में सरलता होनी चाहिए और भाव में पवित्रता होनी चाहिए।

तुम सरलता और भाव पवित्रता के अभाव से ही क्रोधावेश, में आने की भूल करते हो। तुम दूसरे के सामने सरल नही बनते और दूसरों के द्वारा बहुत अधिक दुख अनुभव करते हो लेकिन यह कभी ध्यान नहीं देते कि दूसरे तुम्हारे लिये कितना सहन करते है।

जितनी ही तुम में सरलता पवित्रता बढ़ेगी उतना ही तुम सहनशील बनोगे। बड़े बड़े कष्टों के बीच भी प्रसन्न रहोगे। कठोर हृदय, मलिन अन्तःकरण वाले मनुष्य सदा भय से त्रस्त, अशान्त रहा करते है।

तुम सद्व्योहारों के द्वारा पवित्रता, सरलता की मूर्ति ही बन जाओगे। तब परमानन्द की विभूति तुम्हारे हृदय में ही निहित मिलेगी। तुम में फिर कोई तरस, भूख न रहेगी। तुम ऊपरी कर्मों को भले ही सुन्दर, धर्मयुक्त दिखाओं पर यदि भाव पवित्र न हुआ तो तुम्हारे कर्मो का रूप नहीं देखा जायेगा वरन् भाव के अनुसार ही फल मिलेगा। अतः शुद्ध अभिप्राय से काम करो।

किसी के द्वारा अपमानित होने पर तुम्हें उतना ही दुख होगा। जितना तुम अभिमानी होगे। नम्रता, सरलता, विरमकता, के अभाव में ही दुख होता है। अपने में सदाचार, सद्व्योहार, चरितार्थ होने के लिए तुम्हें सदैव पवित्र ध्यान, भक्ति और विशाल हृदय एवं उदारता का ही आदर्श रखना पड़ेगा और अपने दैनिक ध्यानाभ्यास में दृढ़ रहना नियम है। नियम से गिरना ही तो सबसे बढ़कर दुखद भय की जगह है। सद्व्योहार बल पोषक न्याय ही धर्म है। और सरला, पवित्रत यही दोनों इसके पैर है। प्रेम हृदय है दया परोपकार ही दोनों हाथ हैं, जिनसे सद्व्योहार सुन्दर, सुगठित होता है। देखो, तुम्हारे सद्व्योहार के दर्शनमात्र से दूसरों में सत्यता का प्रेम का, शान्ति का प्रभाव पड़ेगा, तुम्हें देखते ही लोग पवित्रता से भरते जायेगे।

तुम यदि अपने आस पास के लोगों से दुखी हो तो यह तुम्हारे लिए शुभ है कि तुम उस जगह से ऊँचे उठना चाहते हो। तुम्हारा चरित्र विकास, सद्गुण–विकास परमार्थ की ओर प्रगति, इसी जगह से प्रारम्भ होनी चाहिए और इसी जगह पर (जहां तुम्हारे आस पास का वातावरण शान्ति के प्रतिकूल है) तुम्हारे व्योहारों से तुम्हारी बुद्धिमता चतुरता और अन्तर्बल का पता चलेगा।

सद्व्योहार में परिश्रम ही तो उसका जीवन है और आलस्य ही मृत्यु पथ है। अतः सेवाओं द्वारा सहनशीलता द्वारा सद्व्योहार दृढ़ता का ही पुरूषार्थ करो। आलस्य कहीं न करो। सद्व्योहार के लिए आत्म नियंत्रण ही प्रधान साधन है, इससे ही शक्ति

केन्द्रित होती है। प्रकाश तथा शक्ति के क्षेत्र में तुम अपने को बढ़ते हुए पाते हो। यदि तुम अपने आपको बस में न करो, हृदय को सरलता, पवित्रता से न भर दो, तो तुम्हारे पूजा पाठ दुखों को दूर न कर सकेगें आत्म संयम ही तो स्वर्गीय सुखों की प्रथम सीढ़ी है। आत्म संयम ही से सद्गुणों का विकास होता है।

इस प्रकार से आत्म संयम में यदि चोरी से किसी भी स्तर में स्वार्थ का अंश रह जायेगा। तो प्रलोभनों के आक्रमण से तुम मुक्त नहीं हो सकते। ऐ पथिक। जहां तक तुम अपने सामने किसी भी दृश्य, अदृश्य वस्तु का विवेचन द्वारा निरीक्षण करोगे उतना ही तुम अपने आगे बन्धनों की भीड़ से मुक्त होते जाओगे, और यदि कल्पना द्व ारा किसी क्षेत्र में अन्वेषण शुरू करोगे तो बंधते जाओगे। मन के यही दो स्वरूप है विवेचनात्मक और कल्पनात्मक एक से छूटता है, एक से बंधता है।

बड़ी निष्ठुरता के साथ स्वार्थपरता और कामनाओं की गंध को फटकार कर निकाल दो। किसी भी अशक्ति को स्थान न दो। इसके लिए मन पर पूरा संयम रखों तभी तुम व्योहार में पवित्र हो सकोगे। तुम्हारे व्योहार में विरोधी गुणभाव इसी लिये आ जाते है कि तुमने उनके वास्ते कहीं न कहीं स्थान खोल रखा है।

यह भी स्मरण रहे कि कोई भी निष्काम सेवा यदि तुम प्रगट कर दोगे तो तुरन्त वह सकाम हो जायेगी। किसी के प्रति कुछ भी उपकार करो लेकिन कहो नही। न बदला चाहो। बदला चाहना, प्रगट करना, प्रसंशा से प्रसन्न होना, अंहकारी प्रकृति का लक्षण है।

तुम्हें अपने व्योहार से सावधानी की आवश्यकता है। यदि कोई ऐसा अधिकारी प्रेम मात्र तुम्हारे सामने हो जो तुम्हें दुखा दुखा के धन बरबाद करता हो तो समझ लो कि यह पूर्व का ऋण चुका रहा है। कहीं कहीं ऐसा भी देखा जाता है कि एक सम्बन्ध ी निकट नाते से हार्दिक स्नेह का स्वभावतः अधिकार लेकर सेवा सहानुभूति के विरूद्ध शत्रु का सा बर्ताव करता है। यह वही जीव है जिसके साथ कभी ऐसी अनीति की गई है। कि उसी दुर्व्योहार का यह प्रतिफल है। कहीं ऐसे भी सम्बन्धी होते है जो अपने निकटस्थ प्रेम पात्र होकर तद्नुसार स्वरूप, सौन्दर्य एवं सद्गुणों से मोहित

करते हुए हृदय से समग्र प्रेम के अधिकारी बनते है और अचानक ही ऐसे प्रेम पात्र के सम्बन्ध विच्छेद में घोरतम वियोग दुख देखना पड़ता है। यह भी पूर्व अद्वष्ट कर्म चिपाक का प्रत्यक्ष दर्शन है, जोकि करणीय कर्तव्य के उल्लघनं करने का प्रतिफल हैं इसी प्रकार ऐसे भी सम्बन्धी मिलते है जो सभी प्रकार की सुन्दर सेवाओं द्वारा अपने प्रेमास्पद की संतुष्ट करते हैं। ये वहीं सम्बन्धी है। जिनको सभी प्रकार से सद्व्योहारों द्वारा संतुष्ट सुखी किया गया है। वे उसी प्रकार की सेवा से इस रूप में बदला दे रहे हैं इस प्रकार की परिस्थितियों से यही शिक्षा मिलती है कि सभी के साथ सरलता, विनम्रता, निष्काम सेवा एवं निश्छल शुद्ध प्रेम का बर्ताव करते हुए, सद्व्योहार चरितार्थ करते रहो।

ऐ पथिक! तुम दूसरों के हित के लिए, दूसरों के लाभ के लिए अपने सुख की एवं लाभ की चिन्ता छोड़ दो, इसी पद्धति से अधिकाधिक पुण्य बल एकत्रित होगा। किसी के साथ कभी बुराई न करते हुए, परहित करते रहने का व्रत धारण कर लो। यहीं तो जीवन की सार्थकता है, जिससे शुद्ध सतोगुण का सुन्दर विकास होता है, शुद्ध प्रज्ञा का उदय होता है, जिससे परमानन्दमय परमात्म तत्व का बोध होता है। दूसरों को तुम सदा ही प्रेम दया एवं क्षमा की दृष्टि से देखो, लेकिन अपने ऊपर अन्वेषण की कड़ी दृष्टि रखो, तभी तुम पुरयात्मा बनोगे। यह स्मरण रहे कि जो पुरायात्मा हैं वहीं वयोवृद्ध हैं, और जो पापी है, वही अज्ञानी होने के कारण अभी बालक हैं।

ऐ पथिक! तुम बीते हुए दुखों का स्मरण कभी न करों, क्योंकि यह एक मानसिक निर्बलता है, जिससे अंधकार के आवरण में तुम अपने को घिरा पाओगे। इस बात को भी कभी न भूलो कि किसी से बदला लेने की इच्छा मानसिक आत्मघात है। तुम अपने व्योहारों में यदि ईर्षा, द्वेष, दम्भ, कपट आदि दुर्गण कभी नहीं आने देते तो यही तुम्हारा सौभाग्य है, यही हृदय ही विशालता है। परन्तु जब तुम बुराई का बदला बुराई से ही देने को तत्पर हो जाते हो तब इसी से तुम अमृत के स्थान में विष की उत्पत्ति करते हो जिससे तुम्हारा सात्विक शरीर अपवित्र एवं विषाक हो जाता है।

तुम अपने व्योहार में सरलता, विनम्रता एवं दया को ही सतत सामने रखो, इससे तुममे बुद्धिमता और अन्याय सद्‌गुणों का सुन्दर विकास होगा। अंधकार में भटकते हुए अज्ञानी को ही सहानुभूति की, दया की आवश्यकता है, क्योंकि अज्ञानी ही सभी प्रकार से दुखी है, और अज्ञान के कारण ही वह पापी हो सकता है। ऐसी परिस्थिति में आबद्ध प्राणियों से कहीं भी घृणा एवं तिरस्कार न करो। वरन् उनके साथ प्रेम अनुकम्पा, सहानुभूति, सान्त्वना, आदि सद्‌भावों से बर्ताव करो, इसी पद्धति से वे अंधकार से प्रकाश में आ सकेगे।

ऐ पथिक! तुम संसार के व्योहार शुद्ध होने की आशा में रूक कर समय न नष्ट करो, वरन् स्वयं अपने व्योहार की ही शुद्ध करो, इसी से तुम स्वयं ही एक अनुकरणीय सद्‌पात्र बन जाओगे। (प्यारे पथिक) तुम स्थायी हर्ष वहीं पाओगे जहां पाप नहीं होगा। तुम अपने व्योहार में से जितना ही स्वार्थ का त्याग करते जाओगे उतना ही तुम शान्ति शक्ति के भण्डार में उतरते जाओगे।

देखो! सताये जाने पर भी तुम चुप ही रहो। यही तो सहानुभूति है। यह कोई विरले ही पथिक जानते है कि मौन में क्या शक्ति है, परन्तु वाणी से चुप होना ही मौन नहीं है, वरन् सच्चा मौन है मन का शान्त होना। इसी मन के मौन को धारण करो। जहां तक तुम अपनी जिहा पर अधिकार स्थापित कर लोगे, वहीं तक तुम्हारी बुद्धिमता की परिवृद्धि होगी और इसके बल पर ही तुम अपने मस्तिष्क पर भी अधि ाकार प्राप्त कर लोगे, जो महानता का परमगुण है।

इन सब बातों के लिए जहां तक तुम शक्ति को सद् व्योहारों में लगाते हो वहीं तक जीवन का सदुपयोग है। और शक्ति को बुराई के लिए खोल देना ही विनाश के पथ पर यात्रा करना है। तुम अपने गौरव महत्व को न चाहो वरन् परमाधार परमात्मा के प्रति भक्ति चाहो, सत्य चाहो, निष्काम जीवन चाहो। जो अपने आप पर प्रभुत्व रखता है, वही महान है।

ऐ पथिक! इस परम लक्ष्य की ओर बढ़ने में कहीं फिसल जाओ, गिर जाओ, तो दो चार स्वासें ले लो और फिर उठो, फिर चलो। कहीं हताश होकर निर्बलता,

कार्यरता को स्थान न दो। एक बार निशाना चूक जाने पर फिर लगाओ, अवश्य सफल होओगे। तुम कहीं भी अपने दोषों पर दया करोगे तो बस वहीं पर तुम दुख का आवाहन करोगे। दुख, निर्बलता, दरिद्रता आदि केवल अज्ञानी लोगों के लिए है। एका एक उड़ कर पहुँचने की चेष्टा में व्यर्थ शक्ति अपव्यय न करो। अस्वाभाविक कष्टों को उठाकर कोरे तपस्वी न बनो। क्योंकि अज्ञानता से ज्ञान मूर्खता से विवेक, दुर्बलता से बल पूर्णता, बचपन से युवावस्था धीरे ही धीरे एक निश्चित गति से हो जाती है।

देखो! यदि तुम व्योहार में अनेकों बार क्रोध, चिड़ चिड़ापन के भाव से घिर जाते हो, या किसी प्रलोभन से किसी दुर्व्यसन के शिकार बन जाते हो, यदि तुम शोक, विलाप, से अपने को व्याकुल, अधीर पाते हो, तो तुम विवेक दृष्टि से हीन हो और चरित्र से भी हीन हो। लोग तुम्हें भले ही महात्मा बना देवे, लेकिन तुम महानता से गिर गए हो। अतः सावधान होकर अपने आप पर प्राणधिकार प्राप्त करो। तुम्हारी बुद्धिमानी तभी है जब किसी अचानक आये हुए संकट से घबरा न जाओ। वरन् संतोष पूर्वक शांति काल तक धैर्य, रूपी चट्टान पर खड़े रहो। दुखों की आंधी कुछ ही देर में स्वतः शान्त हो जायेगी। सद्व्योहार की दृढ़ता ही तो शक्ति सम्पन्न जीवन है। अतः तुममे इसकी कितनी बड़ी आवश्यकता थी।

ऐ पथिक! अब तुम अपने भीतर एक गम्भीर शान्ति, स्थायी हर्ष और निरन्त्र स्फूर्ति, साहस, अटूट धैर्य, उदारता, सहनशीलता, सरलता, दया आदि सद्गुणों से सुसज्जित एवं असाधारण पुरूष हो। अब तुम्हें अपने पथ में यात्रा के लिए पर्याप्त पाथेय प्राप्त हो गया है। यह सब कुछ सद्व्योहार साधन सम्पन्न पथिक को ही सौभाग्य से मिलता है।

देखो! कहीं सद्गुण विकास में शक्ति तेज की सम्पन्नता में तुम्हारी निम्न प्रकृति अंहकारिणी न बन बैठे। अतः सत्यप्रभु एवं सद्गुरू देव के शरणागति भाव को सदा निष्कलकं रखो। जब तक परतन्त्रता है, तब तक शरणागति लेनी ही पड़ेगी, और तब तो फिर यही बुद्धिमत्ता की बात है कि उसी की शरणागति अपनाओ जो स्वतंत्र हो, और शरणागति इसी लिये होना चाहिए कि अपने आराध्य देव में अभिन्न अभेद

स्वरूप हो जाओ, यहीं पर परमानन्द की प्राप्ति है। अपने पथ पदर्शक प्रभु से सच्ची प्रार्थना करते रहो, और महत्वकाक्षा एवं अभिलाषा का प्रबल होना सच्ची प्रार्थना है और आकांक्षा अभिलाषा को प्रभु में समर्पण करना ही उपासना है और उपासना पूर्ण होने पर स्वानुभव का गान करना ही सच्ची स्तुति है।

ऐ पथिक! अब आगे जो कुछ भी जानना बाकी है, उसे तुम वस्तुतः सद्‌गुरू देव स ही जान सकोगे। अतः सद्‌गुरू देव की दिव्य वाणी को सुनो, इन्हीं का आश्रय लो। और जब तक कुछ भी चाह है। तब तक परमेश्वर का ही अनन्य भाव से अवलम्ब लो, अन्यत्र कही भी दृष्टि न डालो। यही एक सबका परमाश्रय है। परमात्मा का ही सतत चिन्तन, स्मरण, ध्यान करते रहो। चिन्तन की महिमा का फल तो तुम्हारे आगे प्रत्यक्ष ही है। जो जिसका चिन्तन, ध्यान करता है, वह उसी को प्राप्त होता है। उसी की सन्निकटता में तुम अपने को घिरा पाओगे, जिसका चिन्तन करते रहे हो। संसार में देखो, प्राणी अपने अपने अभिलषित (मन चाहे) पदार्थों का चिन्तन ध्यान करते है। जो जिसका चिन्तन ध्यान करते है, उसी में उनकी बुद्धिस्थिर होती है और उसी को वे कभी न कभी पाते ही है। अतः तुम अपने परम लक्ष्य परमानन्द मय परमात्मा का ही निरन्तर स्मरण एवं स्वभाव, गुण चिन्तन करते हुए सद्व्योहार पूर्वक अपने कर्तव्य पालन में दृढ़ रहो।

ऐ बुद्धिमान पथिक! सद्‌गुरू के आज्ञानुसार वैदिक सिद्धान्त को लेकर फलाशा कामना का त्याग कर निष्काम भाव से वर्णाश्रम धर्म मर्यादा सहित कर्तव्य कर्मों को करते हुए बुद्धि को परमात्मा में ही स्थित रखना है। परन्तु इस स्थिति दृढ़ता के लिए अब आगे तुम्हें उस दिव्य ज्ञान प्रकाश में पहुँचना है। वहीं पर तुम्हारी सभी समस्यायें हल हो जायेगी। सब उलफतें दूर हो जायेगी। सावधान होकर आगे देखो।

ज्ञान प्रकाश

पथिक! अब मानवता में दैवत्व का विकास कर रहे हो। अब जिस स्थान पर तुम आये हो यहां कैसा दिव्य प्रकाश अपने स्वर्ण तेज से देदीप्यमान हो रहा है। एक बार अपनी यात्रा आरम्भ से और तब तक की भूमिकाओं तक दृष्टि दौड़ा जाओ। देखो, प्रथम तो तुम्हें परमाधार, परमानन्द मय परमात्मा (जो कि सबके परमाश्रय, परम लक्ष्य हैं) की ओर बढ़ने का सद्विचार पथ मिला। तत्पश्चात् सद्विवेक दृष्टि खुली। उसी के द्वारा तुमने त्याग अस्त्र धारण किया, जिससे आगे पीछे, ऊपर नीचे के बंधनों, कठिनाईयों, रूकावटों, को दूर कर सको। उसके बाद तुम्हें सदुव्योहार साधन दिया गया, जिससे तुम सर्वाडगों द्वारा शक्तिमान, बलवान, गुणवान, होकर सभी प्रकार की दुर्बलता को दूर कर निर्भय गति से यात्रा कर सकी। लेकिन अभी तक तुम श्रद्धा, विश्वास के बल पर अंधकार में ही यात्रा करते आ रहो हो, और इसी श्रद्धा विश्वास ने ही तुम्हें, आगे दिखने वाली ज्ञानालोक की सीमा में पहुॅचा दिया है। यहां तक तो तुम अपने पथ की सीढ़ियों में पग पग पर बाधाओं, विपद्ाओं को सहते हुए आये हो लेकिन अब आगे ज्ञानालोक में उनक अन्त हो जायेगा। अब तुम बाधाओं को सहने के विरूद्ध उन्हें दूर से देखते हुए स्नेह करोगे और इस ज्ञान प्रकाश में अपने लक्ष्य की ओर निर्विघ गति से बढ़ते चलोगे। तुम विश्वास के द्वारा अपने उद्योग में अभी तक केवल स्फूर्ति पाते थे, और अब ज्ञान प्रकाश तुम्हारे उद्योग को सफल बना देगा। अभी तक विश्वास ने सारी यात्रा में सहायक दण्ड का काम किया है। अब यह ज्ञान प्रकाश तुम्हें अपने निर्दिष्ट स्थल में पहुॅचा देगा। देखो! श्रद्धा विश्वास ही के द्वारा ज्ञानालोक की प्राप्ति होती है, और ज्ञानालोक को पालने पर विश्वास की आवश्यकता नहीं रह जाती।

अहा! अब तो इस ज्ञानालोक में तुम्हारी दृष्टि दिव्य हो जायेगी। इसी से तुम अपने परम लक्ष्य, परमानन्द स्वरूप को देख सकोगे। इसके अतिरिक्त भी इसी दिव्य दृष्टि के द्वारा तुम अब इस जगत को देखों, और जगत के कारण को देखो, आदि को देखो, मध्य को देखो और अन्त को भी पहिचान लोगे जीव और ईश्वर के स्वरूप,

सम्बन्ध को देखो। आत्मा और अनात्मा का भी बोध प्राप्त करो। जड़ चेतन को देखो। माया और ब्रहमा की अनिर्वचनीय अनन्तता को देखो। और इस ज्ञान प्रकाश में बन्धन, मुक्ति के स्वरूप को भी स्पष्ट देखो।

परन्तु पथिक! सावधान! इस ज्ञानालोक में पथ प्रवेश करने के पहले अपने ऊपर से किसी भी प्रकार के अभिमान आवरण को तुम उतार फेंको। यहां तो दीनता, नम्नशीलता की निर्दोष, पवित्र चादर ओढ़ कर चलो।

इस पवित्र क्षेत्र में वही पैर बढ़ाने के अधिकारी हैं, जिन्होंने अपने आप को देह, इन्द्रियों की सुख भोगाशक्ति से अलग कर लिया है, जिनका अन्तःकरण सद्व्योहारों से शुद्ध होकर सद्गुणों से धनी बन गया है। पवित्र उत्तम जीवन ही इस दिव्य प्रकाश में आ पाता है। अपने अहंगत, बहिर्मुख, वृत्तियों के निरोध से आध्यात्मिक बल और सुख शान्ति की प्राप्ति होती है। तत्पश्चात ज्ञान प्रकाश की ओर दृष्टि गतिशील होती है।

अब ज्ञान प्रकाश में क्या क्या दीखता है। उसे देखते चलो, मनुष्य का मन सदा ऐसा आश्रय चाहता है, जिससे चित्त को शान्ति मिले, पहले तो स्थूल दृष्टि से जगत के दृश्य पदार्थों में ही वह विश्राम पाने की आशा से कहां कहां शरण लेता है, लेकिन हर जगह से कभी न कभी उसे निराश्रित होना ही पड़ता है। यही तुम्हारा भी हाल है। तुम भी आज एक ऐसा आश्रय चाहते हो जहां इस भ्रान्त, अशान्त चित्त को शान्ति मिले। कभी किसी प्रचलित सिद्धान्त को आधार बनाते हो, कभी किसी देवता की शरण में आश्रय लेते हो, अन्त में स्थूल जगत से ऊपर उठकर एक धर्म ही का आश्रय लेने पर शान्ति मिलती है। जब तुम्हारे कुछ कष्टों का निवारण हो जाता है, बस वहीं तुम्हारी श्रद्धा हो जाती है, वहीं तुम्हारा आश्रय बन जाता है। परन्तु स्मरण रहे! जब तक तुम सुखों की लालसा में, दुखों के भय से, या अनिष्ट की आशंका से चिन्तित होकर कहीं छिपकर शान्ति विश्राम चाहते हो, तब तक तुम अंधकार में ही हो, तुम्हें सत्य का बोध नहीं हुआ।

संसार के समस्त धर्मों का प्राण श्रद्धा ही है। श्रद्धा के आधार पर धर्म का महत्व दर्शित होता है। श्रद्धा हृदय की दृष्टि है, तभी तो श्रद्धालु पुरूष को बड़ी सुन्दर शान्ति

मिलती है पर श्रद्धालु भक्त तब तक अंधेरे में ही चलता है जब तक ज्ञान प्रकाश की सीमा में नहीं आता। श्रद्धा के द्वारा ही तुम्हारे अन्तर भावों और सद्‌गुणों का सुन्दर विकास होता है। पर ज्ञान प्रकाश में उनकी सुन्दर सदुपयोगिता होती है।

जब तक तुम ज्ञानी नहीं होते तब तक वासनाओं के बन्धन से मुक्त होना अति कठिन है। आज तुम रूप नाम जाति संस्कार के ही एक पुज्य बन रहे हो, और तुम्हारा समस्त व्यक्तित्व इन्ही सब दृश्यों का परिणाम है अब इस व्यक्तित्व को ज्ञान प्रकाश में समझ सकोगे और तभी इस मिथ्या अहं से दूर हो सकोगे। और जब मिथ्या अहंकार की भावना नष्ट होगी तब तुम मृत्युभय से मुक्त हो जाओगे।

पथिक! ध्यान देकर अब तुम यह भी देखो कि जन्म जन्मान्तरों से तुम्हारे चित पर विविध दृश्यों ने मानव समाज ने, या नाना प्रकार के सीमित धर्मों ने कैसे कैसे संस्कार डाल रखे है, जिनके रंग में रंगी दृष्टि से आज भी तुम प्रत्येक वस्तु और सत्य को देखने के अभ्यस्त हो रहे हो। पर स्मरण रहे यथार्थ बोध तभी होगा जब तुम्हारा चित्त इन दृश्य संस्कारों से रहित होगा। जब तुम्हारी बुद्धि हर एक पक्ष से रहित होगी तभी तुम सत्य ज्ञान के निर्मल प्रकाश को देख सकोगे। उसी में तुम्हें निष्कलक बोध होगा। अनुभव, बोध, ज्ञान की परमोच सीमा पर पहुंच जाना ही सच्ची उन्नति है और असार जगत की आशक्ति एवं दृश्य बन्धन से अपने मन और बुद्धि को मुक्त कर लेना ही तो सुन्दर विकास है।

यही सत्य बात है कि तुम सत्य की खोज के पहले ही अपनी आंखों से रंगीन चश्मा उतार डालो। सत्य की खोज के वास्ते पक्षपात, विश्वास, भय हठ आदि की दीवालों से बाहर आ जाओ। प्रायः तुम निष्पक्ष होने पर देख सकोगे कि तुम्हारा मन तमाम प्रकार की स्मृतियों का भण्डार बन रहा है, और समाज के व्यक्तिगत भाव एवं एक धर्म ने तुम्हें आच्छादित कर लिया है। ऐसी दशा में तुम इस ज्ञान प्रकाश में आकर सामाजिक व्योहारों का संशोधन करो। इसका यही अर्थ है कि समाज के अन्दर व्यक्तिगत स्वार्थों से सनी हुई कुरीतियों का बहिष्कार करते हुए सत्य सिद्धान्तों को प्रकाश में लाओ। यही तो पूर्णता के विकास का पथ है। पूर्णता की प्राप्ति भविष्य

काल में निर्भर नहीं, वरन् वर्तमान क्षणों में है, सद्व्योहार से ही समता अभ्यस्त होने पर होती है।

जब आप ज्ञान के प्रकाश में पहुॅच रहे है, तब दृश्य के यथार्थ रूप को जानकर, अपने व्यक्तित्व की चैतन्यता एवं अहं भाव से ऊपर उठो। तभी आपको सत्य का बोध होगा। तभी तुम्हें यह स्पष्ट अनुभव होगा कि एक ही परमसत्ता अनादि और परमधार है। वही समस्त विश्वमय होकर अविकार रूप में अविनाशी, सर्वातीत, अगम अगोचर है। यद्यपि वह अचिन्त्य है, तो भी उसे कोई कोई ही अचिन्त्य होकर पा सकता है। उसका दर्शन नहीं, बोध होता है। पर बोध प्राप्ति के लिये बुद्धि अत्यन्त निर्मल होनी चाहिए।

ऐ पथिक! अब तुम यह भी स्पष्ट देखो कि किसी भी वस्तु के वास्तविक रूप को न जान कर ही तुम उनके लिए तरसते थे। उन्हीं के लिए रोया करते थे, पर अब ज्ञान प्रकाश द्वारा तुम्हें हर एक वस्तु के रूप में पता रहेगा। अब स्पष्ट समझ लो कि जैसे आप हैं वैसा आपका संसार भी है। जैसे तुम्हारी दृष्टि होगी, वैसा यह जगत तुम्हें दिखेगा। तब तक आप दुख अप्रसन्नता, चिन्ता से मुक्ति नहीं पा सकते, जब तक ज्ञान प्रकाश पाकर अपने को निर्भय न बना लो, क्योंकि इस स्थिति के पहले हर स्थल पर भय रहता ही है। इस ज्ञान प्रकाश में आप आत्मिक वैभव शक्ति को देखो। आत्मिक पूर्णता का अनुभव करो। यहीं पर तुम्हारे सभी अभावों का अन्त हो जायेगा। यही तो परम सौभाग्य मय जीवन है।

ऐ पथिक! निष्काम भाव से समबुद्धि रख कर कुशलता पूर्वक कर्म करने का जिस प्रकार कर्म योग कहते है, और पवित्रता पूर्वक निश्छल, सरल सद्भावमय परम प्रेम की शैली को भक्ति योग कहते है, उसी प्रकार असंगता, निरीहता, निरसंकल्पता की साम्य स्थिति को ज्ञान योग कहते है।

किसी भी वस्तु में अपने सुख को सीमित न करना, किसी भी वस्तु को अपने में न रखना, इस निर्विकार सत् स्वरूप में बुद्धि सहज स्थिरता को ज्ञानयोग कहते है। इस प्रकाश में यह भी देख लो कि गुणमयी माया में आबद्ध चेतन ही जीव दशा में है

और योगमाया में अधिष्ठित चित्सत्ता ईश्वर स्वरूप है और जहां सभी प्रकार से माया का अभाव है, वहीं शु0 ब्रहमातत्व है। इसी प्रकार अब तुम ज्ञान प्रकाश में अपने सत्स्वरूप को पहिचानो। सावधान! कहीं भी पूर्व संस्कार जनित निर्बलता, दरिद्रता युक्त अवस्थाओ की स्मृति तक न उदय होने दो। अब तो तुम्हारे आगे ज्ञान प्रकाश में शान्ति की नित्य नई झांकी आती रहेगी। तुम अनुभव करो और विवेक दृष्टि से देखो कि यह मनुष्य जीवन ही परमानन्द प्राप्ति का सहायक साधन है। लेकिन तुम देह नहीं हो, तुम्हारी आत्मा तो अविनाशी है, सदा सम है, निर्दोष है, इस आत्मा में ही अनन्त शक्तियां गुप्त रूप से निहित हैं।

तुम तभी तक शोक विलाप दुख से घिरे रह सकते हो जब तक तुमने अपने सत्स्वरूप आत्मा को नहीं पहचाना। जिस प्रकार तुम इस नश्वर देह के साथ सम्बन्धि ात होकर देहमय बन रहे हो उसी प्रकार तुम सत्यस्वरूप आत्मा के साथ तन्मय होकर, देह के जन्म मरण दुख से मुक्त हो जाओगे। प्रथम तो उस सर्वव्यापक परमाधार को (अपने देह संघात में ही जो आत्मा रूप में व्यापक है।) पहचानो, उसी को सुनो, उसी को देखो, उसी में तन्मय हो जाओ। वहां शोक नहीं, दुख नही, अशान्ति नहीं, भय नही, वहां सदा शान्ति है। एक्य है, पूर्ण प्रेम है, संतोष और तृप्ति है। वही तो आनन्द स्वरूप है। सत्स्वरूप में बुद्धि का स्थिर हो जाना ही सत्य ध्यान या समाधि है।

ऐ पथिक! अब इस ज्ञान प्रकाश में तुम देखो ज्ञान ही तो तुम्हारा वास्तविक स्वरूप है। और अनुभव करो कि मैं आत्मा हॅू, देह नहीं, मैं अविनाशी हॅू, विनाशी नही, पर यह तभी होगा जब तुम किसी भी असत उपाधि के अभिमानी न रह जाओगे। इसके लिए तुम्हें अभ्यास की आवश्यकता है। प्रथम तो मन का ही नियंत्रण करो। यह दो प्रकार से होता है। एक तो मन की गति का मार्ग ही बदल दो, या दूसरी युक्ति यह है कि मन की गति को ही रोक दो।

जब तुम्हारी समस्त छुद्र इन्द्रियां मौन धारण कर लेगी, तब यह मन शान्त रूप धारण करेगा। और तभी तुम्हें अपने अन्तर सत्स्वरूप का बोध होगा। सत्स्वरूप का बोध होने के लिए सतत् उसी की खोज रहनी चाहिए। निरन्तर चिन्तन,

मनन करो, सावधान होकर देखो, यह अन्तरात्मा तुम्हारे मन के पीछे है यानी बुद्धि ही से छिपा है। अभी तक तुम विचार पथ में सद्विवेक दृष्टि से त्याग अस्त्र द्वारा अपने आपको विविध प्रकार की उपाधियों से मुक्त नहीं कर सके। अब तुम सबसे खिंचकर अन्तरसत्ता की ही उपासना में तन्मय हो जाओ, तब तुम अपने को इस असत् प्रपत्र एवं देहाभिमान से मुक्त पाओगे। अभी जो तुम क्षुद्र देह, प्राण, मन, बुद्धि, आदि संघातमय बन रहे हो वही तुम सच्चिदानन्द स्वरूप परम आत्मा की उपासना द्वारा इस सीमा से बाहर हो कर अपने को विराट विश्व की चित सत्ता से एक पाओगे। अरे वीर पथिक! सावधान होकर देखो, यह प्रकाश सब कुछ बता रहा है। देखो, अरे यह ज्ञानमय जीवन ही तो जीवन है। इसके बिना सर्वत्र ही मृत्यु है। अतः अब मृत्यु पथ से मुड़कर तुम यह अमर जीवन प्राप्त कर रहे हो। तुम सत्स्वरूप आत्मा हो। तुम असत् विकारी नहीं हो। यह तो केवल संग दोष है। तुम अपने अहं को देह से अलग कर आत्मा से मिला दो।

इस सत्स्वरूप में स्थिति दृढ़ता के लिए तुम्हें स्तरगत गुणधर्मों से सावधान होना पड़ेगा। किसी भी वासना को तुम विपरीत वासना से दबा सकते हो, पर वह नष्ट नहीं होती। वरन् बीज रूप से अन्तर, अव्यक्त भूमि में छिपी रहती है, और जब कभी उसके योग्य उद्दीपक कारण रूप, बाहर से भोजन मिलता है, तब उसी से पुनः वह अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित और फलित हो सकती है। अतः वासना का पूर्ण रूपेण तिरोभाव होना ही तुम्हारे लिए परम इष्ट है, क्योंकि यदि वासना की अतृप्ति शेष रही तो वासना दब गई है, लेकिन सर्व भावेन नष्ट नहीं हो सकी। कोई भी वासना किसी भी तरह से जब तृत्प होकर पूर्ण शान्त हो जाती है, तभी मन इच्छा रहित होकर निःसंकल्प चिद्रूप हो जाता है। यही निरीहता, निःसंकल्प अवस्था ही मन की स्वरूप स्थिति है।

यह भी समझ लो कि मन की सभी क्रियायें वासनाओं के द्वारा भावनाओं, कामनाओं को लेकर ही होती है और मन की क्रिया के लिए प्राणों की क्रिया निश्चित है। अतः अभ्यास में यदि प्राणों को निश्चल किया जाये तो मन भी निश्चल हो जायेगा। पर एक सूक्ष्म बात और विदित हुई है उसे भी समझ लो, किसी भी साधना

से इन्द्रिय संयम, प्राण–संयम, मनो संयम साध लेने पर मन बाहय जगत में चंचल नही होता पर उसका एक दूसरा द्वार खुलता है, जो देह के भीतर ही प्राण के स्तर में गतिशील होता है। और अपने अन्तर्निहित संस्कारों, भावों के अनुरूप स्वप्नवत् दृश्य–दर्शन में मुग्ध हो कर वहीं भ्रमण करते हुए आनन्द मानता है। इस स्थूल देह के परे सूक्ष्म शरीर है। जो भूवर्लोक की प्रकृति से बना हुआ है। उसमें यदि मन की चेतना जाग्रत हो जाये तो वहां अदभुद अलौकिक दृश्य दर्शन है, और दिव्य रूप है, एवं दिव्य मनोहर शब्दध्वनि होती रहती है। यह चचंल मन वहीं तक जाता है। परन्तु प्राण निरोध तो करना ही पड़ता है अन्य कोई सुलभ जपाय नहीं है। यह प्राण शक्ति जो अगणित नाड़ियों में प्रवाहित रहती है, उसे योगाभ्यास द्वारा एक ही नाड़ी में लाना ही पूर्ण एकाग्रता और योग–सिद्धि है।

इस प्राण शक्ति संयम के लिए अनेकों योगी पथिक प्राणायाम की साधना करते है। कुम्भक के द्वारा समान वायु को बलवान बनाकर एक केन्द्र नाड़ी में स्थित करते है। इसी में असंख्य प्राणधारायें एकत्र हो जाती है। यही पूर्ण निरोध है। यही मनोवृत्तियां एक शक्ति पुज बनकर तेज का रूप धारण करती है, जिसके आलोक में साधक अपना अभीष्ट सिद्ध कर लेता है। यही है योग सिद्धि। परन्तु ध्यान रहे कि जब तक मन पवित्र नहीं होता तब तक वह स्थायी रूप में अपने अभीष्ट लक्ष्य में स्थिर नहीं हो सकता, क्योंकि बीज रूप में मन के अन्दर छिपी हुई ऐहिक कामनायें प्रस्फुटित हो उठती है। यही तो बन्धन है, इसी को यदि आप शुद्ध कर लो, इस मन को ही निर्मल बना लो तो स्वयं ही आप अपने परमाधार सत्स्वरूपमय हो जाओगे।

सच्ची स्थायी शान्ति प्राप्त करने का यही उपाय है कि अपने मन पर संयम करते हुए प्राण, इन्द्रियों की सीमा से बाहर आकर इन निम्न स्तरों के गुणधर्म संस्कारों से अपने अहं को मुक्त कर, सत्स्वरूप को पहिचानो। एकाग्रचित होकर तुम अपनी सभी उलझनों को दूर कर सकोगे। समस्त कठिनाईयो को पार कर सकोगे। शान्ति शक्ति के द्वारा सब कुछ सरल हो जायेगा।

ऐ पथिक! इस ज्ञान प्रकाश में तुम्हें जिन ऊंचे सोपनों में पूर्णता की ओर चढ़ना है उसके लिए तुम्ही को प्रथम अपने अन्तर्निहित शक्तियों को सुप्तावस्था से जगाना होगा या अनुचित धाराओं में बहते हुए शक्ति प्रवाह को निरूद्ध करना पड़ेगा। तभी तक काम, क्रोध, ईर्षा, द्वेष, लोभ, उद्वेग, उत्तेजना, आतुरता, आवेश इत्यादि में नाना भांति से शक्ति बिखरती रहती थी। पर अब तुम इन विषयों का जहां तक दमन कर सके हो वहीं तक शक्ति अब बुद्धिमता के रूप में परिगत हो जायेगी और दूरदर्शिता, सूक्ष्मग्राहकता, त्रिकालज्ञता के रूप में दिव्यता धारण करेगी। इन शक्तिधाराओं को रोक कर तमाम तरह की सिद्धियां प्राप्त की जाती है, पश्चभूतों में अधिकार प्राप्त होता है। रोग निवारण की शक्ति, वरदान, या श्राप देने का बल इन्हीं शक्तियों के जागरण या प्रवाह रूपान्तर से प्राप्त होता है। योगियों के शरीर में इतनी सूक्ष्म ग्राहकता हो जाती है कि निम्न प्रकृति के जन संसर्ग में पड़ने से या शहरों की दूषित वातावरण वाली गलियों से निकलने पर हृदयकमल मुरझा जाता है और इसी प्रकार शुद्ध जन संसर्ग में, पवित्र वातावरण वाले मन्दिरों में, या किसी शुद्ध तपोभूमि में चेतना फूल की तरह खिल उठती है। यहां पर शक्ति जागरण के बहुत ही गुप्त रहस्य है जो सद्गुरूदेव की समीपता में प्राप्त हो सकते है। और सद्गुरूदेव उसी साधक पथिक को शक्ति जागरण की साधना बताते है जो अपने सर्वाडगों द्वारा शुद्ध हो चुका है, क्योंकि यदि निश्चित भी कोई दुर्वासना, ऐहिक सुख भोग की कामना किसी स्तर में शेष रह जाये और उस दशा में योगाभ्यास से गुप्त शक्ति जाग्रत हो जाये या देवी शक्ति का अवतरण हो जाये तो साधक में बीज रूप से छिपी हुई वही वासना, कामना, एवं क्षुद्र प्रकृति की अहमिति–भावना इतनी प्रबलता से जाग्रत हो जायेगी कि साधक का अंध पतन हो जायेगा। अतः प्रारम्भावस्था में उन्हीं साधनों की आवश्यकता है जिनसे सद्गुणों का समुचित विकास हो। अन्तर्बाह पवित्र होने पर, सद्गुणों से प्रकृति पूर्ण होने पर अन्तर शक्ति का जागरण एवं दिव्य प्रकाश का अवतरण सार्थक होगा।

ऐ पथिक! प्रारम्भावस्था में चित्तएकाग्रता के लिए भू मध्य में सुरति द्वारा ध्यान करना सरल और सुन्दर साधन है। इसके साथ साथ परमात्मतत्व का किसी भी विशेषण नाम द्वारा स्मरण करते रहना भी मनोनिरोध के लिए आवश्यक है। किसी भी धारण द्वारा अभ्यास करते करते ध्यान दृढ़ होने पर मनोवृत्ति ध्येय में जब स्थिर हो जाती है तो यही समाधि है। समाधि भी शास्त्रों में सविकल्प, निर्विकल्प भेद से कई तरह की वर्णित है। वस्तुतः साधक की सत्स्वरूपाकार वृत्ति हो जाये, यही सहज समाधि है। इसके अतिरिक्त चेतना जब अन्तर दिव्य स्तरों में जाग्रत होती है तब किसी को साकार रू‍प में स्थूल दर्शन होता है। किसी को ज्योति प्रकाश रूप में सूक्ष्म दर्शन होता है, किसी को सच्चिदानन्द स्वरूप का बोध और यह परम दर्शन कहा जाता है। तदनुसार विविध प्रकार की मनोहर दिव्य ध्वनियां सुनाई देती है। यही साध ान की सिद्धावसाि है। जहां पर मानवता में दैवत्व का विकास हो कर ईश्वरत्व प्रगट होता है। यही सफल काम, दिव्य जीवन है।

ऐ पथिक! इस प्रकार के योगाभ्यासी जन संसर्ग से दूर रहकर निर्जन स्थान में नियमित आहार–बिहार द्वारा इन्द्रिय मन को संयम ले बस में रखते हुए निन्दा, स्तुति, हानि, लाभ, दुख, सुख, संयोग, वियोग आदि विविध द्वन्दों में समस्थित रह कर निश्चय ही ज्ञान प्रकाश में परम सत्य का बोध प्राप्त करते है। देखों, सुनो, इनकी पवित्र वाणी द्वारा क्या क्या गुप्त रहस्य खुल रहे है, सावधान होकर समझो।

इस दृष्टादृष्ट समस्त विश्व में और श्रुताश्रुत लोक–लोकान्तरों में, एक ही अनन्त परमाधार सत्ता है जो सर्वत्र बाहर–भीतर नीचे–ऊपर सब में ओत प्रोत है। यही परम सत्ता विश्व सृष्टि की उपाधि से समष्टि रूप में परमात्मा रूप में बोधित होती है, और यही संघात उपाधि के भेद से व्यष्टि रूप से आत्मा रूप में अभिव्यक्त होती है, यह आत्मा भी वास्तविक रूप से अपने स्थान में सदा निर्विकार एक रस समस्थित है, इसी शुद्ध चिन्मात्र आत्म सत्ता की चेतना का जब बुद्धि के साथ संयोग होता है तभी जड़ बुद्धि चैतन्य के साथ तद्रप होती है, उसी में अहं का स्फुरण होता है पुनः यहीं अहं जब किसी उपाधि के साथ मिलता है। उसी से तद्पता धारण कर लेता

है, यही इस अहं की महिमा है, यह अहमिति भाव मनस क्षेत्र में उतर कर मनोमय चेतना का एक रूप धारण कर लेता है, और इसी प्रकार मनोमय पुरूष रूप में वहीं अहं प्राण क्षेत्र से तन्मय होकर प्राणमय पुरूष की उपाधि धारण करता है।

यही पुनः स्थूल देह में आत्मसात् होकर देव जीव बन जाता है। वास्तव में अहं का कोई रूप नहीं पर जिस प्रकार की गुण धर्म वाली उपाधि का संयोग होता है, बस उसी से यह तद्रप हो जाता है। देह के साथ देहमय, प्राण के साथ प्राण मय, मन के साथ मनोमय, बुद्धि के साथ ज्ञानमय होकर यही अहं कर्मों का कर्ता झोंका बनता है। पुनः सत् स्वरूप के ज्ञान–बोध द्वारा समस्त उपाधियों का अभिमान छोड़ता है, तब यही अहं परम शुद्ध सतस्वरूप आत्मा से तन्मय बन जाता है। पुनः आत्मा एक संघात की उपाधि से मुझ होते ही विश्वमय परमात्मा में तन्मय हो जाता है। अब सोच कर देखो कि इस अहं का क्या रूप है। क्या लीला है। क्या माया है? यह सब इस ज्ञान प्रकाश में तुम्हें स्पष्ट दृष्टि गोचर हो रहा है। इस अहं को ही बन्धन है और इसी अहं की मुक्ति होती है। यहीं अहं उपाधि बन्धन में बंधकर जीवात्मा कहा जाता है।